(1) पुर्तगाल — 1498 — वास्को डि गामा
(2) स्पेन — 1494 — कोलम्बस
(3) ईस्ट इंडिया कंपनी — 31 दिसम्बर 1600 ई०
(4) डच ईस्ट इंडिया — 1602
(5) फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया — 1664
(6) डेनिश — 1616
(7) स्वीडिश — 1731

अध्याय : 2

भारत में यूरोपीयों का प्रवेश और अंग्रेजों की विजय

यूरोप के साथ भारत के व्यापारिक संबंध बहुत पुराने, यूनानियों के जमाने के हैं। मध्यकाल में यूरोप और दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ भारत का व्यापार अनेक मार्गों से चलता था। एशिया में इस व्यापार का अधिकांश भाग अरब व्यापारियों और जहाजियों द्वारा चलाया जाता था, और इसके भूमध्यसागरीय और यूरोपीय भाग पर इटली वालों का लगभग एकाधिकार था। एशिया का माल यूरोप तक पहुंचने से पहले अनेक राज्यों से और हाथों से गुजरता था। फिर भी यह व्यापार बहुत लाभदायक होता था।

1453 में उस्मानिया सल्तनत ने जब एशिया माइनर को जीत लिया और कुस्तुंतुनिया पर अधिकार कर लिया तो पूर्व और पश्चिम के बीच के पुराने व्यापारिक मार्ग तुर्कों के नियंत्रण में आ गए। इसके अलावा यूरोप और एशिया के व्यापार पर वेनिस और जेनेवा के व्यापारियों का अधिकार था और वे पश्चिमी यूरोप के नए राष्ट्रों, खासकर स्पेन और पुर्तगाल, को इन पुराने व्यापारिक मार्गों से होने वाले व्यापार में भागीदार नहीं बनाना चाहते थे। इसलिए पश्चिमी यूरोप के देश और व्यापारी भारत और इंडोनेशिया के स्पाइस आइलैंड (मसाले के द्वीप) के लिए नए और अधिक सुरक्षित समुद्री मार्गों की तलाश करने लगे। स्पाइस आइलैंड (मसाले के द्वीप) को तब ईस्ट इंडीज के नाम से जाना जाता था। उनकी मंशा व्यापार पर अरबों और वेनिसवासियों के एकाधिकार को तोड़ना, तुर्कों की शत्रुता मोल लेने से बचना और पूर्व के साथ सीधे व्यापार-संबंध स्थापित करना था। चूंकि 15वीं सदी में जहाज-निर्माण और समुद्री यातायात में बहुत प्रगति हुई थी, इसलिए वे यह काम करने में अच्छी तरह समर्थ थे। इसके अलावा पुनर्जागरण ने पश्चिमी यूरोप के लोगों में दुस्साहसी कार्य करने की भावना खूब भर दी थी।

इस दिशा में पहला कदम पुर्तगाल और स्पेन ने उठाया। इन देशों के नाविकों ने अपनी-अपनी सरकारों की सहायता से और उनकी आज्ञा पर भौगोलिक खोजों का एक महान युग आरंभ किया। 1494 में स्पेन का कोलंबस भारत को खोजने निकला था लेकिन वह अमरीका की खोज कर बैठा। 1498 में पुर्तगाल के वास्को डि गामा ने यूरोप से भारत तक का एक नया और पूरी तरह से समुद्री मार्ग ढूंढ निकाला। वह केप आफ गुड होप होते हुए अफ्रीका का पूरा चक्कर लगाकर कालीकट पहुंचा। वह जिस माल को लेकर वापस लौटा वह पूरी यात्रा की कीमत के 60 गुना दामों पर बिका। इन और ऐसे ही दूसरे समुद्री मार्गों की खोजों ने विश्व के इतिहास में एक नए अध्याय का सूत्रपात किया। 17वीं और 18वीं सदियों में विश्व व्यापार में बेहद बढ़ोत्तरी हुई। यूरोप को अब एक खूब लंबा-चौड़ा अमरीकी महाद्वीप उपलब्ध हो गया और यूरोप और एशिया के संबंध पूरी तरह बदल गए।

15वीं सदी के मध्य में अफ्रीका में यूरोपीय देशों ने प्रवेश किया तो उससे भी उनको आरंभिक पूंजी निर्माण का एक प्रमुख स्रोत प्राप्त हुआ। आरंभ में विदेशियों को अफ्रीकी सोने और हाथी दांत ने आकर्षित किया। परंतु बहुत जल्द ही गुलामों का व्यापार अफ्रीका के साथ व्यापार का प्रमुख भाग बन गया। 16वीं सदी में इस व्यापार पर स्पेन और पुर्तगाल का एकाधिकार रहा। बाद में इस व्यापार में डच, फ्रांसीसी और अंग्रेज व्यापारी छा गए। खासकर 1650 के बाद अनेक वर्षों तक हजारों अफ्रीकियों को गुलाम बनाकर वेस्ट इंडीज और उत्तरी तथा दक्षिणी अमरीका में बेचा जाता रहा। कारखानों का माल लेकर गुलामों का व्यापार

(1) स्पाइस आइलैंड — ईस्ट इंडीज
(2) अफ्रीका सोने व हाथी दाँत पर्तु बाद में गुलामों का व्यापार प्रमुख हो गया

Scanned with CamScanner

(1) पुर्तगाल — गोवा, दमन, दीव, कालीकट — पुर्वकाला
(2) अल्बुकर्क — गोवा — 1510 हरमुज से लेकर मलाया में स्थित मलक्का तक
(3) हॉलैंड — इंडोनेशिया — उच

करने वाले जहाज यूरोप से अफ्रीका पहुंचते, अफ्रीका के तटों पर नीग्रो लोगों से माल की अदला-बदली करते, फिर इन दासों को लेकर अटलांटिक पार करते, वहां बागानों और खदानों की औपनिवेशिक पैदावार से उनकी अदला-बदली करते, और फिर इस माल को यूरोप में बेच देते। तिकोने व्यापार से होने वाला यही बेपनाह मुनाफा था जिस पर इंग्लैंड और फ्रांस की व्यापारिक श्रेष्ठता स्थापित हुई। पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमरीका की समृद्धि अधिकांशतः गुलामों के इसी व्यापार पर और गुलामों के मेहनत से चलने वाले बागानों पर निर्भर थी। इसके अलावा दास-व्यापार और दासों की मेहनत से चल रहे बागानों के मुनाफे से ही वह पूंजी बनी जो 18वीं और 19वीं सदी की औद्योगिक क्रांति में काम आई। बाद में भारत से ले जाई गई दौलत ने भी ऐसी ही भूमिका निभाई।

16वीं सदी में ही यूरोप के व्यापारियों और सैनिकों ने एशियाई देशों में घुसने और फिर उनको अधीन बनाने का लंबा सिलसिला शुरू किया। बेहद मुनाफा देने वाले पूर्वी व्यापार पर लगभग एक सदी तक पुर्तगाल का एकाधिकार रहा। भारत में भी पुर्तगाल ने कोचीन, गोवा, दीव और दमण में अपने व्यापारिक केंद्र खोले। पुर्तगालियों ने आरंभ से ही व्यापार के साथ शक्ति का भी प्रयोग किया। इस काम में उन्हें समुद्र पर राज करने वाले अपने हथियारबंद जहाजों की श्रेष्ठता से मदद मिली। जमीन पर भारत और एशिया की सैनिक शक्ति बहुत अधिक थी, मगर उनके मुकाबले मुट्ठी भर पुर्तगाली सैनिक और जहाजी समुद्र में अपनी स्थिति बनाए रखने में सफल रहे। मुगलों की जहाजरानी के लिए खतरे पैदा करके वे मुगल सम्राटों से भी अनेक व्यापार संबंधी छूटें लेने में सफल रहे।

गोवा पर 1510 में अधिकार करने वाला अलफांसो डि अलबुकर्क जब वायसराय था तब फारस की खाड़ी में स्थित हरमुज से लेकर मलाया में स्थित मलक्का तक और इंडोनेशिया के स्पाइस आइलैंड तक एशिया के पूरे समुद्र तट पर पुर्तगालियों ने अधिकार जमा लिया। उन्होंने भारत के तटीय क्षेत्र पर भी कब्जा कर लिया, और अपना व्यापार तथा अपना अधिकार क्षेत्र बढ़ाने और यूरोपीय प्रतिद्वंद्वियों से अपने व्यापारिक एकाधिकार को सुरक्षित रखने के लिए लगातार लड़ाइयां लड़ते रहे। समुद्री डकैती और लूटपाट में भी वे पीछे न रहे। अमानवीय अत्याचार करने और अव्यवस्था फैलाने में भी उनका हाथ रहा। उनके बर्बर व्यवहार के बावजूद भारत में कुछ इलाकों पर कब्जा लगभग एक सदी तक बना रहा। **इसका कारण यह था कि खुले समुद्र पर उनका राज चलता था, उनके सैनिक और प्रशासक कड़े अनुशासन के पाबंद थे, और चूंकि दक्षिणी भारत मुगल साम्राज्य से बाहर था, इसलिए मुगलों की ताकत का सामना उनको नहीं करना पड़ा।**

16वीं सदी के उत्तरार्ध में इंग्लैंड और हालैंड और बाद में फ्रांस उभरती हुई व्यापारिक और प्रतिद्वंद्वी शक्तियां थीं, इन लोगों ने विश्व-व्यापार पर स्पेनी और पुर्तगाली एकाधिकार के खिलाफ एक कड़ा संघर्ष छेड़ दिया। इस संघर्ष में स्पेन और पुर्तगाल की हार हुई। अब अंग्रेज और डच व्यापारी केप आफ गुड होप होकर भारत जाने वाले रास्ते का प्रयोग करने लगे, और पूर्व में अपना साम्राज्य बनाने की दौड़ में शामिल हो गए। अंत में इंडोनेशिया पर डचों का और भारत, श्रीलंका और मलाया पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।

1602 में डच ईस्ट कंपनी की स्थापना हुई और डच संसद ने एक चार्टर स्वीकार करके कंपनी को युद्ध छेड़ने, संधियां करने, इलाके जीतने और किले बनाने के अधिकार दे दिए। डचों की खास दिलचस्पी भारत में नहीं बल्कि इंडोनेशिया के जावा, सुमात्रा और स्पाइस आईलैंड जैसे द्वीपों में थी जहां मसाले खूब पैदा होते थे। जल्द ही उन्होंने मलय जलडमरूमध्य और इंडोनेशियाई द्वीपों से पुर्तगालियों को खदेड़ दिया, और 1623 में इन क्षेत्रों पर अधिकार करने के प्रयास कर रहे अंग्रेजों को हराया। उन्होंने पश्चिमी भारत में गुजरात के सूरत, भड़ोच, कैंबे और अहमदाबाद, केरल के कोचीन, मद्रास के नागपत्तनम, आन्ध्र के मसुलीपटटम, बंगाल के चिन्सूरा, बिहार के पटना और उत्तर प्रदेश के आगरा नगरों में भी व्यापार-केंद्र खोले। 1658 में उन्होंने पुर्तगालियों से श्रीलंका को भी जीत लिया।

एशियाई व्यापार पर भी अंग्रेज व्यापारियों की लालच भरी निगाहें भी जमी थीं। पुर्तगालियों की सफलता, मसालों, मलमल, रेशम, सोने, मोतियों, दवाओं, पोर्सलीन और एबोनी से भरे उनके जहाजों और इनसे प्राप्त भारी मुनाफों ने अंग्रेज व्यापारियों की भी आंखें चकाचौंध कर दीं, और वे भी इस मुनाफा देने वाले व्यापार में शामिल होने के लिए

Scanned with CamScanner

अंग्रेज — 1600
डच — 1602
डेन — 1616
फ्रांसीसी — 1664
स्वीडिश — 1731

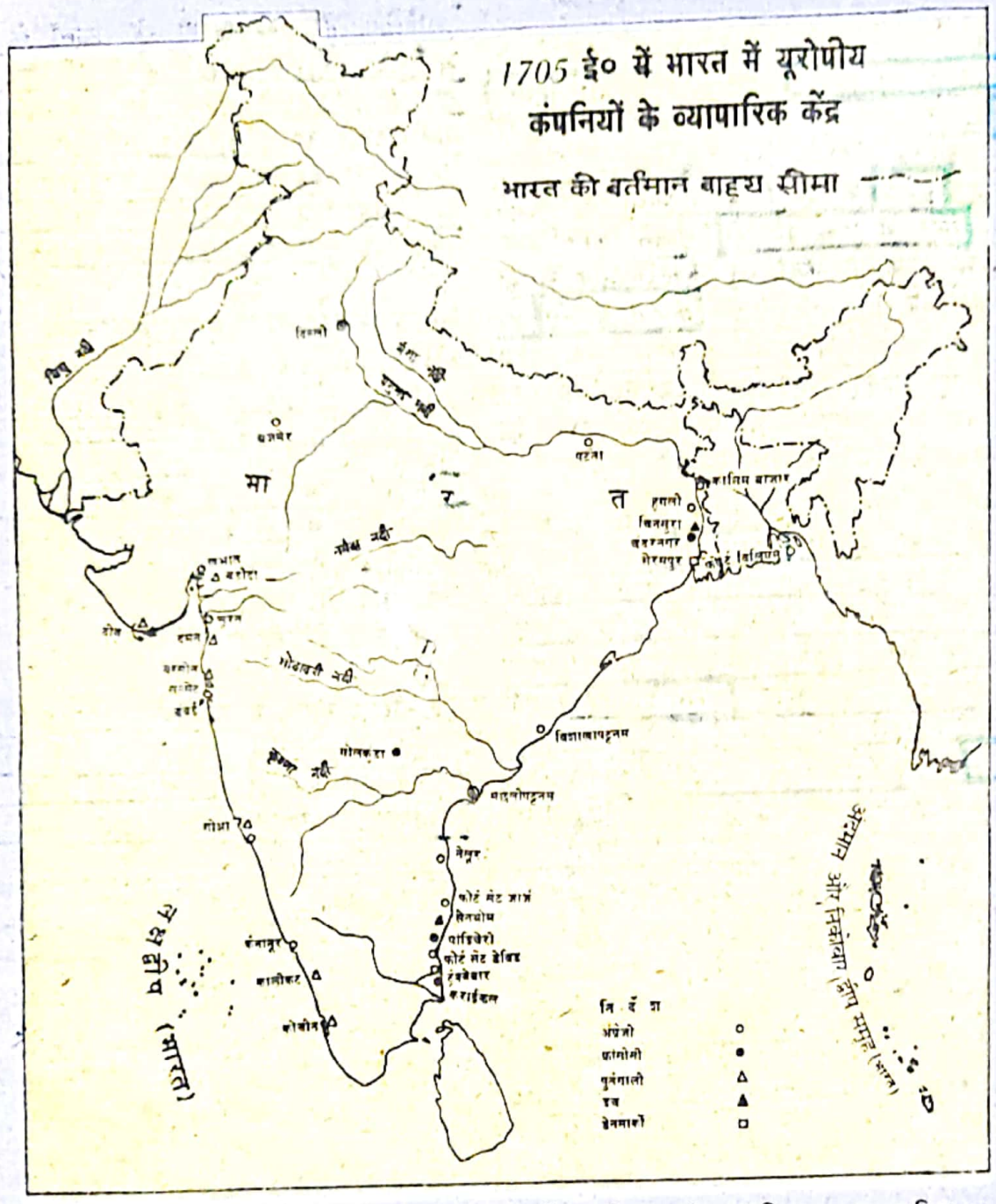

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

© भारत सरकार का प्रतिलिप्यधिकार, 1986

समुद्र में भारत का जल प्रदेश उपयुक्त आधार रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

(1) पुर्तगालियों ने आरंभ में ही व्यापार में सैन्य-शक्ति का भी प्रयोग किया
(2) चूंकि दक्षिण भारत मुगल साम्राज्य से बाहर था इसलिए मुगलों की ताकत का सामना उनको नहीं करना पड़ा
(3) डच ईस्ट इंडिया कंपनी — 1602
(4) 1658 — में उन्होंने पुर्तगालियों से श्रीलंका को भी जीत लिया

Scanned with CamScanner

बैपन हो गए । 1599 में मर्चेंट एडवेंचरर्स नाम से जाने जाने वाले कुछ व्यापारियों ने पूर्व से व्यापार करने के लिए एक कंपनी बनाई । इस कंपनी को, जिसे ईस्ट इंडिया कम्पनी कहा जाता है, 31 दिसंबर 1600 को महारानी एलिजाबेथ ने एक रायल चार्टर के द्वारा पूर्व से व्यापार करने का एकमात्र अधिकार दे दिया । 1608 में इस कंपनी ने भारत के पश्चिमी तट पर सूरत में एक फैक्टरी खोलने का निश्चय किया; तब व्यापारिक केंद्रों को फैक्टरी नाम से ही जाना जाता था । कंपनी ने तब कैप्टन हाकिंस को जहांगीर के दरबार में शाही आज्ञा लेने के लिए भेजा । परिणामस्वरूप एक शाही फरमान के द्वारा पश्चिमी तट की अनेक जगहों पर अंग्रेज कंपनी को फैक्टरियां खोलने की आज्ञा मिल गई ।

मगर इस छूट से ही अंग्रेज संतुष्ट न थे । 1615 में उनका दूत सर टामस रो मुगल दरबार में पहुंचा । रो मुगल साम्राज्य के सभी भागों में व्यापार करने और फैक्टरियां खोलने का अधिकार देने वाला एक शाही फरमान जारी कराने में सफल रहा । 1622 में जब सम्राट चार्ल्स द्वितीय ने एक पुर्तगाली राजकुमारी से शादी की तो पुर्तगालियों ने उसे बंबई का द्वीप दहेज में दे दिया । अंततः गोवा, दीव और दमण को छोड़कर पुर्तगालियों के हाथ से भारत में उनके कब्जे वाले सारे इलाके निकल गए । इंडोनेशिया के द्वीपों से हो रहे मसालों के व्यापार में भागीदारी को लेकर अंग्रेज कंपनी की डच कंपनी से ठन गई । इन दो शक्तियों के बीच रह-रहकर होने वाली लड़ाई 1654 में आरंभ हुई, और यह 1667 में तब समाप्त हुई जब अंग्रेजों ने इंडोनेशिया पर सारे दावे छोड़ दिए और बदले में डचों ने भारत की अंग्रेज बस्तियों को न छूने का वादा किया ।

कम्पनी के व्यापारिक प्रभाव का विस्तार (1600-1714)

भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की शुरूआत बहुत ही मामूली रही । 1623 तक इसने सूरत, भड़ौंच, अहमदाबाद, आगरा और मसुलीपट्टम में फैक्टरियां स्थापित कर ली थीं । आरंभ से उसने व्यापार और कूटनीति के साथ-साथ युद्धों का भी सहारा लेने और जिन क्षेत्रों में फैक्टरियां स्थापित की थीं, उन पर कब्जा करने के भी प्रयास किए ।

दक्षिण भारत में परिस्थितियां अंग्रेजों के अधिक अनुकूल थीं क्योंकि वहां उन्हें किसी शक्तिशाली भारतीय सरकार का सामना नहीं करना पड़ा । विजयनगर का महान साम्राज्य 1565 में ही नष्ट हो

सत्रहवीं शताब्दी के आरंभिक दौर में सूरत नगर का एक दृश्य

चुका था, और उसकी जगह अनेक छोटे और कमजोर राज्य खड़े हो गए थे। उन्हें लालच देकर बहलाना या अपनी सैनिक शक्ति से डराना आसान था। अंग्रेजों ने दक्षिण में अपनी पहली फैक्टरी मसुलीपट्टम में 1611 में स्थापित की। पर जल्द ही उनकी गतिविधियों का केंद्र मद्रास हो गया जिसका पट्टा 1639 में वहां के स्थानीय राजा ने उन्हें दे दिया था। राजा ने उनको उस जगह की किलेबंदी करने, उसका प्रशासन चलाने और सिक्के ढालने की अनुमति इस शर्त पर दी कि बंदरगाह से प्राप्त चुंगी का आधा भाग राजा को दिया जाएगा। यहां अंग्रेजों ने अपनी फैक्टरी के इर्द-गिर्द एक छोटा सा किला बनाया जिसका नाम फोर्ट सेंट जार्ज पड़ा।

दिलचस्प बात यह है कि मुनाफे के लालची व्यापारियों की यह कंपनी शुरू से ही इस नीति पर अड़ी थी कि भारतीय उन्हें इस देश को जीतने का खर्च स्वयं दें। उदाहरण के लिए, कंपनी के कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने 1683 में मद्रास के अधिकारियों को लिखा कि

> हम चाहते हैं कि आप धीरे-धीरे नगर . . . (मद्रास) को किलाबंद करें और किले को इतना मजबूत बनाएं कि वह किसी भारतीय राजा या भारत में डच शक्ति के आक्रमण के सामने अडिग रहे . . . पर हम आपसे यह भी चाहते हैं कि आप अपना काम इस प्रकार (लेकिन पूरी विनम्रता के साथ) जारी रखें कि नगर निवासी ही सारी मरम्मत और किलाबंदी का पूरा खर्च उठाएं। . . .

1668 में ईस्ट इंडिया कंपनी ने पुर्तगाल से बंबई का द्वीप प्राप्त किया और उसकी तत्काल किलेबंदी कर दी। बंबई के रूप में अंग्रेजों का एक बड़ा और आसानी से रक्षा कर सकने योग्य बंदरगाह प्राप्त हुआ। इस कारण से और क्योंकि उस वक्त उभरती हुई मराठा शक्ति अंग्रेजों के व्यापार के लिए खतरे पैदा कर रही थी, पश्चिमी तट पर कंपनी के हेडक्वार्टर के रूप में सूरत का स्थान जल्द ही बंबई ने ले लिया।

पूर्वी भारत में अंग्रेज कंपनी ने अपनी आरंभिक फैक्टरियों में एक की स्थापना 1633 में उड़ीसा में की थी। 1651 में उसे बंगाल के हुगली नगर में व्यापार की इजाजत मिल गई। तब कंपनी ने जल्द ही पटना, बालासोर, ढाका और बंगाल-बिहार के दूसरे स्थानों पर भी फैक्टरियां खोल लीं। अब उसकी इच्छा थी कि बंगाल में उसकी एक स्वतंत्र बस्ती होनी चाहिए। अब वह भारत में राजनीतिक सत्ता स्थापित करने के सपने देख रही थी ताकि मुगलों को मजबूर करके व्यापार में मनमानी करने की छूट ले ली जाए, भारतीयों को अपना माल सस्ता बेचने और कंपनी का माल महंगा खरीदने के लिए मजबूर किया जा सके, प्रतिद्वंद्वी यूरोपीय व्यापारियों को बाहर रखा जाए, और कंपनी का व्यापार भारतीय राजाओं की नीतियों से स्वतंत्र रहकर जारी रहे। राजनीतिक सत्ता स्थापित करके कंपनी भारतीय राजस्व पाने और इस तरह इस देश को इसी के साधनों से जीतने की आशा कर सकती थी। उस समय ऐसी योजनाएं खुलकर सामने रखी गईं। 1687 में कंपनी के डायरेक्टरों ने मद्रास के गवर्नर को सलाह दी कि

> . . . वह एक ऐसी नागरिक और सैनिक शक्ति स्थापित करे और राजस्व का सुरक्षित और इतना बड़ा स्रोत बनाए कि भारत में एक बड़े, मजबूत और हमेशा-हमेशा के लिए सुरक्षित ब्रिटिश राज्य की नींव डाली जा सके।

1689 में उन्होंने घोषणा की कि

> हमारे राजस्व में वृद्धि हमारा उतना ही बड़ा उद्देश्य है जितना कि हमारा व्यापार। जिस समय बीसियों दुर्घटनाएं हमारे व्यापार में बाधा डाल रही हों उस समय यही वस्तु है जो हमारी शक्ति को बनाए रख सकेगी। यही वस्तु है जो भारत में हमें एक राष्ट्र के रूप में स्थापित करेगी . . .

1686 में जब अंग्रेजों ने हुगली को तहस-नहस कर दिया और मुगल सम्राट के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी तब दोनों के बीच शत्रुता की शुरूआत हो गई। पर अंग्रेजों ने स्थिति को पूरी तरह गलत समझा था और मुगलों की शक्ति को कम करके आंका था। औरंगजेब के शासन में मुगल साम्राजय अभी भी ईस्ट इंडिया कंपनी की मामूली ताकत पर बहुत भारी था। युद्ध का अंत अंग्रेजों के लिए घातक रहा। उन्हें बंगाल स्थित उनकी फैक्टरियों से खदेड़ दिया गया और वे गंगा के मुहाने के एक द्वीप में शरण लेने के लिए बाध्य हो

गए जो बीमारियों का गढ़ था । उनकी सूरत, मसूलीपट्टम और विशाखापत्तनम स्थित फैक्टरियों पर भी कब्जा हो गया और बंबई स्थित उनके किले पर घेरा पड़ गया । यह देखकर कि अंग्रेज अभी भी मुगल शक्ति से लड़ने में समर्थ नहीं हैं, उन्होंने एक बार फिर झुककर दरबार में हाजिरी बजाई और प्रार्थना की कि "उन्होंने जो जुर्राब किए हैं उन्हें क्षमा किया जाए ।" उन्होंने भारतीय शासकों के संरक्षण में व्यापार करने की इच्छा प्रगट की । जाहिर है कि उन्हें सबक मिल चुका था । मुगल सम्राट से व्यापार संबंधी छूटें लेने के लिए एक बार फिर उन्होंने चापलूसी और विनम्रता का सहारा लिया ।

मुगल अधिकारियों ने अंग्रेजों की बदमाशी को फौरन माफ कर दिया । वे यह तो जान भी नहीं सकते थे कि अहानिकर दीखने वाले ये विदेशी व्यापारी एक दिन देश के लिए गंभीर खतरा बन जाएंगे । इसके बजाए उन्होंने यह मान लिया कि कंपनी के द्वारा किए जा रहे विदेशी व्यापार से भारतीय दस्तकारों और व्यापारियों को लाभ होता है और इस तरह सरकारी खजाने की आमदनी बढ़ती है । इसके अलावा जमीन पर कमजोर होने के बावजूद अंग्रेज समुद्रों में काफी मजबूत थे, और इसलिए वे ईरान, पश्चिम एशिया, उत्तरी और पूर्वी अफ्रीका तथा पूर्वी एशिया के साथ होने वाले भारतीय व्यापार और जहाजरानी को पूरी तरह तहस-नहस करने में समर्थ । इसलिए औरंगजेब ने 1,50,000 रुपये हर्जाना लेकर उन्हें फिर से व्यापार करने की छूट दे दी । 1698 में कंपनी ने सुतानाटी, कालिकाता और गोविंदपुरी की जमींदारी प्राप्त कर ली और वहां उन्होंने अपनी फैक्टरी के इर्द-गिर्द फोर्ट विलियम नाम का किला बनाया । यही गांव जल्द ही बढ़कर एक नगर बन गया जिसे अब कलकत्ता कहा जाता है । 1717 में कंपनी ने सम्राट फर्रुखसियर से एक फरमान प्राप्त किया जिसमें 1691 में उन्हें प्राप्त विशेषाधिकारों को दोबारा मान्यता दी गई और उन्हें गुजरात और दक्कन तक भी बढ़ा दिया गया था । लेकिन 18वीं सदी पूर्वार्ध में बंगाल पर मुर्शिद कुली खान और अली वर्दी खान जैसे शक्तिशाली नवाबों का शासन था । वे अंग्रेज व्यापारियों पर कड़ा नियंत्रण रखते थे तथा अपने विशेषाधिकारों के दुरुपयोग से उन्हें रोकते थे । उन्होंने अंग्रेजों को कलकत्ता की किलेबंदी को मजबूत बनाने और नगर पर स्वतंत्र रूप से शासन करने की छूट भी नहीं दी । यहां ईस्ट इंडिया कंपनी नवाब का एक जमींदार होकर रह गई ।

कंपनी की राजनीतिक महत्वकांक्षाएं तो पूरी न हुईं, मगर उसका व्यापार पहले से बहुत अधिक फूला-फूला । भारत से इंगलैंड में होने वाला प्रतिवर्ष आयात 1708 में 5,00,000 पौंड का था, मगर 1740 तक वह 1,795,000 पौंड का हो गया । मद्रास, बंबई और कलकत्ता की अंग्रेज बस्तियां विकसित हो रहे नगरों का केंद्र बन गईं । बड़ी संख्या में भारतीय व्यापारी और बैंकर इन नगरों की ओर आकर्षित हुए । ऐसा अंशतः इन नगरों में उपलब्ध नए व्यापारिक अवसरों के कारण था, और अंशतः इस कारण कि मुगल साम्राज्य के बिखरने से इन नगरों के बाहर अनिश्चित और असुरक्षा की परिस्थितियां थीं । 18वीं सदी के मध्य तक मद्रास की जनसंख्या बढ़कर तीन लाख, कलकत्ता की दो लाख और बंबई की सत्तर हजार हो चुकी थी । 1600 के चार्टर में केप आफ गुड होप के पूर्व में व्यापार करने का एकाधिकार कंपनी को 15 वर्षों के लिए दिया गया था । इस कंपनी का स्वरूप एक पूरी तरह बंद निगम या हजारदारी जैसी थी । भारत में कंपनी की कोई फैक्टरी एक किलाबंद क्षेत्र जैसी होती थी जिसके अंदर गोदाम, दफ्तर और कंपनी के कर्मचारियों के लिए घर होते थे । ध्यान दें कि इन फैक्टरियों में उत्पादन का कोई काम नहीं होता था ।

कंपनी के कर्मचारियों को बहुत कम वेतन मिलता था । उनकी वास्तविक आमदनी का स्रोत देश के ही अंदर का वह व्यापार था जिसकी छूट उन्हें कंपनी देती थी, और इसी आमदनी के लिए ये कर्मचारी भारत में नौकरी करने के लिए बेचैन रहते थे । हां, भारत और यूरोप के बीच व्यापार करने का अधिकार केवल कंपनी के लिए सुरक्षित था ।

दक्षिण में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के टकराव

नए-नए क्षेत्र और राजनीतिक सत्ता स्थापित करने की अंग्रेज ईस्ट इंडिया कंपनी की जो महत्वकांक्षा 17वीं सदी के अंत में औरंगजेब के हाथों धूल चाटने लगी थी, वह 1740 के दशक में दोबारा उभरी जब मुगल साम्राज्य का पतन कुछ-कुछ स्पष्ट होने लगा । नादिरशाह के हमले के बाद केंद्रीय सत्ता का पतन खुलकर सामने आ गया था । लेकिन पहले भी भारत में विदेशी घुसपैठ को बहुत गुंजाइश न थी, क्योंकि

Scanned with CamScanner

वहां जोशीले मराठों का प्रभुत्व था । पूर्वी भारत में अली वर्दी खान ने कड़ा नियंत्रण कायम कर रखा था । लेकिन दक्षिण भारत में परिस्थितियां विदेशी दुस्साहसकारियों के लिए धीरे-धीरे अनुकूल होती जा रही थीं । जहां औरंगजेब की मृत्यु के बाद केंद्रीय सत्ता नहीं रह गई थी, और 1748 में निजाम-उल-मुल्क आसफजाह की मौत के बाद उसका मजबूत शासन भी नहीं रह गया था । इसके अलावा चौथ वसूलने के लिए मराठों सरदार हैदराबाद और दक्षिण के दूसरे भागों पर लगातार हमले करते रहते थे । इन हमलों के कारण राजनीतिक परिस्थितियां अनिश्चित हो गई थीं और प्रशासन नष्ट हो गया था । कर्नाटक में गद्दी के लिए भाई-भाई से लड़ रहा था ।

इन परिस्थितियों में विदेशियों को अपना राजनीतिक प्रभाव फैलाने और दक्षिण भारतीय राज्यों के मामलों पर नियंत्रण स्थापित करने में सहायता मिली । लेकिन व्यापारिक और राजनीतिक दावे सामने रखने में अंग्रेज अकेले न थे । वे 17वीं सदी के अंत तक अपने पुर्तगाली और डच प्रतिद्वंद्वियों को तो नष्ट कर चुके थे, पर फ्रांस एक नया प्रतिद्वंद्वी बनकर खड़ा हो गया था । 1744 से 1763, अर्थात् लगभग 20 वर्षों तक भारतीय व्यापार, संपत्ति और क्षेत्र पर अधिकार के लिए फ्रांसीसियों और अंग्रेजों में भयानक युद्ध होते रहे ।

फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना 1664 में हुई थी । पूर्वी तट पर कलकत्ता के पास चंद्रनगर में और पांडिचेरी में उसने एक मजबूत स्थिति बना ली थी । पांडिचेरी को पूरी तरह किलाबंद किया गया था । पूर्वी तथा पश्चिमी तटों के बंदरगाहों में फ्रांसीसी कंपनी की कुछ और फैक्टरियां भी थीं । इसने हिंद महासागर में मारीशस और रियूनियन के द्वीपों पर भी कब्जा कर रखा था ।

फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी पूरी तरह फ्रांस सरकार पर निर्भर थी जो अनुदान, कर्जे और दूसरी सुविधाएं देकर उसकी सहायता करती रहती थी । फलस्वरूप, उस पर सरकार का बहुत अधिक नियंत्रण था और वही 1723 के बाद डायरेक्टरों की नियुक्ति करती रहती थी । कंपनी पर सरकार का यह नियंत्रण उसके लिए बहुत हानिकारक सिद्ध हुआ । उस समय फ्रांस में एक निरंकुश, अर्धसामंती और अलोकप्रिय सरकार थी जो भ्रष्टाचार, निकम्मापन और अस्थायित्व की मारी हुई थी । भविष्योन्मुखी न होकर यह सरकार पतित, परंपराओं में जकड़ी हुई और आम तौर पर समय की आवश्यकताओं को समझने से दूर थी । इस तरह की सरकार का नियंत्रण कंपनी के हितों के लिए घातक ही हो सकता था ।

1742 में यूरोप में फ्रांस और इंग्लैंड का युद्ध भड़क उठा । यूरोप का यह इंग्लैंड-फ्रांस युद्ध जल्द ही भारत तक पहुंच गया और यहां दोनों ईस्ट इंडिया कंपनियां टकराने लगीं । 1748 में फ्रांस और इंग्लैंड का सामान्य युद्ध समाप्त हो गया । फिर भी भारत में व्यापार और क्षेत्रीय अधिकार की प्रतिद्वंद्विताएं बनी रहीं, और इनका फैसला इस पार या उस पार होना ही था ।

इस समय पांडिचेरी में फ्रांसीसी गवर्नर-जनरल डुप्ले था जिसने यह नीति निकाली कि भारतीय शासकों के आपसी झगड़ों में अनुशासित और आधुनिक फ्रांसीसी सेना के द्वारा हस्तक्षेप किया जाए, और एक के खिलाफ दूसरे का साथ देकर विजेता से मुद्रा, व्यापार और क्षेत्र संबंधी लाभ लिए जाएं । इस तरह फ्रांसीसी कंपनी के लाभ के लिए और भारत से अंग्रेजों को खदेड़ने के लिए उसने स्थानीय राजाओं, नवाबों और सरदारों के साधनों और सेनाओं का उपयोग करने की योजना बनाई । इस रणनीति की सफलता में केवल एक ही बात बाधक हो सकती थी, अर्थात् भारतीय शासकों द्वारा ऐसी विदेशी हस्तक्षेप की अनुमति देने से इनकार । पर भारतीय शासक देशभक्ति की भावना से प्रेरित न होकर व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा और लाभ की संकुचित भावना से प्रेरित थे । अपने देशी शत्रुओं से हिसाब चुकाने के लिए विदेशियों की सहायता मांगने में उन्हें कोई हिचक न थी ।

1748 में कर्नाटक और हैदराबाद में एक ऐसी स्थिति पैदा हो गई कि डुप्ले के षड्यंत्रकारी दिमाग को खुलकर खेलने का मौका मिला । कर्नाटक में चांदा साहब ने नवाब के खिलाफ षड्यंत्र करना आरंभ कर दिया, और हैदराबाद में निजाम-उल-मुल्क आसफजाह के मरने पर उसके बेटे नासिर जंग और पोते मुजफ्फर जंग में सत्ता के लिए गृहयुद्ध छिड़ गया । इस स्थिति का डुप्ले ने लाभ उठाया और चांदा साहब तथा मुजफ्फर जंग से इस बात का गुप्त समझौता कर लिया कि वह अपने प्रशिक्षित फ्रांसीसी और भारतीय सैनिकों द्वारा उनकी सहायता करेगा । 1749 में इन तीन सहयोगियों ने अंबर के युद्ध में अनवारुद्दीन को हराकर मार

Scanned with CamScanner

(1) नासिर जंग, मुजफ्फर जंग → सलाबत जंग
(2) बुसी — हैदराबाद — डुप्ले ने एक श्रेष्ठ अफसर बुसी को सेना की एक टुकड़ी के साथ भेजा
(3) सलाबत जंग — उत्तरी सरकार — मुस्तफा नगर, एल्लौर, राजामंद्री और चिकाकोल
(4) पांडिचेरी — 1760 आयर कूट — लल्ली — पांडिचेरी — 1763

डाला । उसका बेटा मुहम्मद अली त्रिचुरापल्ली भाग गया । शेष कर्नाटक चांदा साहब के अधिकार में आ गया और उसने पुरस्कारस्वरूप फ्रांसीसियों को पांडिचेरी के निकट 80 गांव दे दिए ।

फ्रांसीसी हैदराबाद में भी सफल रहे । नासिर जंग मारा गया और मुजफ्फर जंग निजाम अर्थात् दकन का सूबेदार बन गया । नए निजाम ने पांडिचेरी के निकट जमीनें और मसुलीपट्टम की प्रसिद्ध नगर फ्रांसीसी कंपनी को पुरस्कार में दे दिए । उसने कंपनी को पांच लाख रुपए और उसकी सेनाओं को भी पांच लाख रुपए दिए । डुप्ले को बीस लाख रुपयों के साथ एक जागीर भी मिली जिसकी वार्षिक आय एक लाख रुपए थी । इसके अलावा पूर्वी तट पर कृष्णा नदी से लेकर कन्या कुमारी तक के मुगल क्षेत्रों का उसे आनरेरी गवर्नर भी बना दिया गया । डुप्ले ने अपने सर्वश्रेष्ठ अफसर बुसी को फ्रांसीसी सेना की एक टुकड़ी के साथ हैदराबाद में नियुक्त किया । दिखावे के लिए इस नियुक्ति का उद्देश्य था शत्रुओं से निजाम की रक्षा करना, पर वास्तव में यह उसके दरबार में फ्रांसीसी प्रभाव बनाए रखने के लिए था । जब मुजफ्फर जंग अपनी राजधानी की ओर बढ़ रहा था तब एक दुर्घटना में वह मारा गया । बुसी ने फौरन निजामुल-मुल्क के तीसरे बेटे सलाबतजंग को गद्दी पर बिठा दिया । बदले में नए निजाम ने फ्रांसीसियों को आंध्र का वह क्षेत्र पुरस्कार में दे दिया जिसे उत्तरी सरकार कहा जाता है । इसमें चार जिले मुस्तफानगर, एल्लौर, राजामुंद्री और चिकाकोल शामिल थे ।

दक्षिण भारत में अब फ्रांसीसियों की शक्ति चरम सीमा पर थी । डुप्ले की योजनाओं को आशा से भी अधिक सफलता मिली थी । फ्रांसीसियों ने अपना काम भारतीय शासकों को मित्र बनाने से आरंभ किया था और अब अंत में उनको अपना आश्रित बना लिया था ।

लेकिन अंग्रेज अपने प्रतिद्वंद्वी की सफलताओं को खामोश बैठे नहीं देख रहे थे । फ्रांसीसी प्रभाव को कम करने और अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए वे नासिर जंग और मुहम्मद अली से मिलकर षड्यंत्र कर रहे थे । 1750 में उन्होंने मुहम्मद अली की ओर से अपनी पूरी ताकत लगा देने का निश्चय किया । नौजवान रावर्ट क्लाइव तब कंपनी की सेवा में एक क्लर्क था । उसने प्रस्ताव किया कि कर्नाटक की राजधानी अर्काट पर हमला करके त्रिचुरापल्ली में घिरे मुहम्मद अली पर फ्रांसीसियों का दबाव कम किया जा सकता है । यह प्रस्ताव मान लिया गया । तब क्लाइव ने केवल 200 अंग्रेज और 300 भारतीय सैनिकों को लेकर अर्काट पर हमला किया और उसे जीत लिया । जैसी कि आशा थी, चांदा साहब और फ्रांसीसियों ने मजबूर होकर त्रिचुरापल्ली का घेरा उठा लिया । फ्रांसीसी सेनाओं की कई बार हार हुई । अब फ्रांसीसियों का सितारा डूब रहा था क्योंकि उनकी सेना और उनके जनरल अंग्रेजों का सामना नहीं कर पा रहे थे । अंत में भारतीय युद्ध के भारी खर्चों से परेशान होकर और अमरीकी उपनिवेशों के हाथ से निकल जाने के डर से फ्रांसीसी सरकार ने समझौता-वार्ता आरंभ की, और 1754 में उसने अंग्रेजों की यह मांग मान ली कि भारत से डुप्ले को वापस बुला लिया जाए । यह बात भारत में फ्रांसीसी कंपनी के भविष्य के लिए बहुत घातक सिद्ध हुई ।

दोनों कंपनियों का यह अस्थायी समझौता 1756 में टूट गया जब इंग्लैंड और फ्रांस के बीच एक और युद्ध छिड़ गया । युद्ध के एकदम आरंभ में ही अंग्रेज बंगाल पर नियंत्रण करने में सफल रहे । इसका वर्णन इसी अध्याय में आगे किया गया है । इस घटना के बाद भारत में फ्रांसीसियों के लिए कुछ बचा ही नहीं । बंगाल की अथाह संपत्ति ने युद्ध का पलड़ा अंग्रेजों के पक्ष में झुका दिया । इस युद्ध की निर्णायक मुठभेड 22 जनवरी 1760 को वांडीवाश में हुई जब अंग्रेज जनरल आयर कूट ने लल्ली को हरा दिया । एक साल के अंदर-अंदर भारत में फ्रांसीसियों के हाथ से सब कुछ जाता रहा । युद्ध का अंत 1763 में पेरिस समझौते के साथ हुआ । इसके अनुसार फ्रांसीसियों को भारत स्थित उनकी सारी फैक्टरियां लौटा दी गईं; पर अब वे उनकी किलाबंदी नहीं कर सकते थे और न ही वहां सैनिक रख सकते थे । अब वे केवल व्यापार-केंद्रों के रूप में काम कर सकती थीं । इसके बाद फ्रांसीसियों को भारत में अंग्रेजों के संरक्षण में रहना था । दूसरी ओर अंग्रेज हिंद महासागर पर छा चुके थे । सभी यूरोपीय प्रतिद्वंद्वियों को एक-एक करके हराने के बाद अब वे भारत-विजय के काम में लग गए ।

फ्रांसीसियों और उनके भारतीय सहयोगियों के साथ अपने युद्ध के दौरान अंग्रेजों ने कुछ महत्वपूर्ण और बहुमूल्य पाठ सीखे । पहला यह कि देश में

(1) अंबूर का युद्ध 1749 — अनवरुद्दीन को मार डाला — चंदा साहब
(2) चंदा साहब ने फ्रांसीसी को पांडिचेरी के निकट 80 गांव दे दिए

Scanned with CamScanner

1763 — पेरिस समझौता
(1) नवाब से आज्ञा लिए बिना कलकत्ता की किलाबंदी शुरू कर दी।
(2) सिराजुद्दौला — अंग्रेज - क्लाइव
(3) फ्रेंच-इस्ट इंडिया — 1754 — समझौता
(4) फ्रांसीसी — चंदननगर — 1763

भारत में यूरोपीयों का प्रवेश और अंग्रेजों की विजय

(1) 1717 के फरमान द्वारा मुगल बादशाह फर्रुखसियर ने कंपनी और बंगाल के नवाब के बीच झगड़े की जड़ बना हुआ था। इसका एक नतीजा यह था कि बंगाल की सरकार को राजस्व की हानि होती थी। दूसरे, कंपनी को दस्तक जारी करने का जो अधिकार मिला था, उसका दुरुपयोग कंपनी के कर्मचारी अपने निजी व्यापार पर भी कर न चुकाने के लिए करते थे। मुर्शिद कुली खान से लेकर अली वर्दी खान तक बंगाल के सभी नवाबों ने 1717 के फरमान की अंग्रेजों की व्याख्या पर आपत्ति की थी। उन्होंने कंपनी को खजाने में एकमुश्त रकमें देने के लिए मजबूर कर दिया था और दस्तकों के दुरुपयोग को सख्ती से बंद करा दिया था। इस मामले में कंपनी को भी नवाब का अधिकार मानना पड़ा था, मगर उसके कमचारी इस अधिकार से बचने और उसका उल्लंघन करने का कोई मौका नहीं छोड़ते थे।

पानी तब सर से ऊपर आ गया जब 1756 में युवक और जल्द क्रोधित हो जाने वाला सिराजुद्दौला अपने दादा अली वर्दी खान की जगह गद्दी पर बैठा। उसने अंग्रेजों से माग की कि वे जिन शर्तों पर मुर्शिद कुली खान के जमाने में व्यापार करते थे, उन्हीं शर्तों पर अब भी व्यापार करें। अंग्रेजों ने जो दक्षिण भारत में फ्रांसीसियों को हराकर खुद को ताकतवर महसूस करते थे, इस बात को मानने से इनकार कर दिया। वे अपने मालों पर नवाब को कर चुकाने को तैयार नहीं हुए, उल्टे उन्होंने उन भारतीय मालों पर भारी महसूल लगा दिए जो कलकत्ता आते थे। (कलकत्ता तब उनके नियंत्रण में था।) युवक नवाब स्वाभाविक था कि क्रोधित हो उठता। उसे शंका थी कि कंपनी उसकी शत्रु है और बंगाल की गद्दी की लड़ाई में उसके दुश्मनों का साथ दे रही है। बात तब हद से आगे बढ़ गई, जब नवाब से आज्ञा लिए बगैर कंपनी ने कलकत्ता की किलाबंदी शुरू कर दी क्योंकि उसे तब चंदननगर में जमे फ्रांसीसियों के साथ युद्ध की आशंका थी। सिराज ने सही तौर पर इस हरकत को अपनी प्रभुता पर एक चोट समझा। कोई भी स्वतंत्र शासक अपनी धरती पर व्यापारियों की किसी निजी कंपनी को किले खड़ा करने और निजी युद्ध चलाने की छूट भला कैसे देता। दूसरे शब्दों में, सिराज इस पर तैयार था कि यूरोपीय लोग व्यापारी बनकर ही रहें और मालिक बनने की कोशिश न करें। उसने अंग्रेजों और फ्रांसीसियों, दोनों को आज्ञा दी कि वे

(1) सिराज ने अंग्रेजों से मांग की कि वे उन शर्तों पर मुर्शिद कुली खाँ के जमाने से व्यापार करते थे जो शर्तें अब भी व्यापार करें।
(2) उल्टे अंग्रेजों ने भारतीय मालों पर भारी "महसूल" लगा दिए जो कलकत्ता आते थे।

राष्ट्रवादी भावना के अभाव के कारण वे भारतीय शासकों के आपसी झगड़ों का फायदा उठाकर अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षाएं पूरी कर सकते थे। दूसरे, पश्चिमी तर्ज पर प्रशिक्षित यूरोपीय या भारतीय पैदल सेना आधुनिक अस्त्रों से लेस होकर और तोपखाने का सहारा लेकर पुरानी तर्ज वाली भारतीय सेनाओं को घमासान युद्धों में आसानी से हरा सकती थी। तीसरे, यह सिद्ध हो गया कि यूरोपीय तर्ज पर प्रशिक्षित और हथियारबंद भारतीय सैनिक यूरोपीय सैनिक जैसा ही अच्छा सैनिक बन सकता था। और चूंकि भारतीय सैनिकों में भी राष्ट्रवादी भावना का अभाव था, इसलिए जो भी उसे अच्छा पैसा दे, वह उन्हें अपनी सेवा में रख सकता था। अंग्रेजों ने अब अंग्रेज अफसरों की देख-भाल में "सिपाही" कहे जाने वाले भारतीय सैनिकों की एक शक्तिशाली सेना बनाने का काम आरंभ कर दिया। इस सेना को अपना प्रधान साधन बनाकर और भारतीय व्यापार और क्षेत्रों के बेपनाह साधनों को अपने अधिकार में लाकर अब अंग्रेज ईस्ट इंडिया कंपनी ने युद्धों और क्षेत्रीय प्रसार के एक नए युग में कदम रखा।

बंगाल पर अंग्रेजों का अधिकार

भारत में ब्रिटिश राजनीतिक सत्ता का आरंभ 1757 के प्लासी के युद्ध से माना जा सकता है जब अंग्रेज ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना ने बंगाल के नवाब सिराजउद्दौला को हरा दिया। इसके पहले दक्षिण भारत में फ्रांसीसियों के साथ अंग्रेजों के टकराव तो पूर्वाभ्यास मात्र थे। इन टकरावों से प्राप्त अनुभव का बंगाल में अच्छी तरह उपयोग किया गया।

बंगाल तब भारत का सबसे उपजाऊ और धनी प्रांत था। इसके उद्योग-धंधे और व्यापार बहुत विकसित थे। प्रांत से ईस्ट इंडिया कंपनी और उसके कर्मचारियों के लाभदायक व्यापारिक हित जुड़े थे। 1717 में मुगल सम्राट के एक शाही फरमान द्वारा अंग्रेजों को बहुमूल्य विशेषाधिकार मिले हुए थे। इस फरमान के अनुसार कंपनी को बिना कर चुकाए बंगाल से अपने सामान का आयात-निर्यात करने की आजादी मिली हुई थी, और इन मालों की आवाजाही पर पास या दस्तक जारी रखने का उसे अधिकार था। कंपनी के कर्मचारियों को भी निजी व्यापार की छूट थी, हालांकि उनको फरमान की सुरक्षा प्राप्त न थी। उनको वही कर देने पड़ते थे जो भारतीय व्यापारियों को। यह फरमान कंपनी

Scanned with CamScanner

कलकत्ता और चंद्रनगर की अपनी किलेबंदियां गिरा दे और एक दूसरे से लड़ने से बाज आएं। फ्रांसीसी कंपनी ने तो इस आज्ञा का पालन किया पर अंग्रेज कंपनी ने इसे मानने से इनकार कर दिया क्योंकि कर्नाटक में मिली विजय ने उसकी महत्त्वाकांक्षाओं और आत्मविश्वास दोनों को बढ़ा दिया था। वह नवाब की इच्छा के खिलाफ भी बंगाल में जमे रहने और अपनी शर्तों पर व्यापार करने पर अड़ी थी। इस कंपनी ने अपनी सभी गतिविधियों को नियंत्रित करने के ब्रिटिश सरकार के अधिकार को स्वीकार किया था। ब्रिटेन में ब्रिटिश सरकार ने उसके व्यापार और उसकी ताकत पर जो अंकुश लगाया था उसे कंपनी ने भीगी बिल्ली बनकर स्वीकार कर लिया था। 1693 में उसका चार्टर समाप्त हो जाने पर संसद ने पूर्व में व्यापार करने का अधिकार उससे छीन लिया था, और तब कंपनी ने ब्रिटेन के सम्राट, संसद और राजनेताओं को भारी रिश्वत दी थी (केवल एक वर्ष में उसने 80 हजार पौंड घूस में दिए थे)। फिर भी अंग्रेज कंपनी मांग कर रही थी कि बंगाल के नवाब की चाहे जो आज्ञा हो, उसे बंगाल में मुक्त व्यापार के पूरे अधिकार मिलने चाहिए। यह नवाब की प्रभुता के लिए सीधे-सीधे एक चुनौती थी। कोई भी शासक संभवतः इस बात को स्वीकार न करता। सिराजुद्दौला में इतनी राजबुद्धि थी कि वह अंग्रेजों की चालों के दूरगामी प्रभावों को समझ सके। उसने उनसे अपने देश के कानून मनवाने का निर्णय किया।

जोश में आकर मगर बेकार की जल्दीबाजी में और पर्याप्त तैयारी किए बिना सिराजुद्दौला ने कासिम बाजार की अंग्रेज फैक्टरी पर कब्जा कर लिया, फिर कलकत्ता की ओर कूच किया और 20 जून 1756 को फोर्ट विलियम पर अधिकार कर लिया। तब अपनी आसानी से मिली इस जीत की खुशी मनाने वह कलकत्ता से वापस आ गया और अपने जहाजों में बैठकर भागते अंग्रेजों पर उसने कोई ध्यान नहीं दिया। यह एक गलती थी क्योंकि उसने दुश्मन की ताकत को कम करके आंका था।

अंग्रेज अधिकारियों ने समुद्र के निकट फल्टा में शरण ली जिसे उनकी जहाजरानी संबंधी श्रेष्ठता ने सुरक्षित बना दिया था। यहां अब वे मद्रास में सहायता मिलने की प्रतीक्षा करने लगे, और इस बीच वे नवाब के दरबार के प्रमुख लोगों के साथ साजिश और गद्दारी का ताना-बाना बुनते रहे। इनमें प्रमुख थे मीर जाफर जो मीर बख्शी के पद पर था, मानिकचंद जो कलकत्ता का अधिकारी था, अमीचंद जो एक धनी व्यापारी था, जगतसेठ जो बंगाल का सबसे बड़ा बैंकर था, और खादिम खान जिसकी कमान में नवाब की सेना का एक बड़ा भाग था। मद्रास से एडमिरल वाटसन और कर्नल क्लाइव की कमान में एक बड़ी नौसैनिक और सैनिक सहायता भी आ पहुंची। क्लाइव ने 1757 के आरंभ में दोबारा कलकत्ता को जीत लिया, और नवाब को मजबूर करके अंग्रेजों की सारी मांगें मनवा लीं।

अंग्रेज फिर भी संतुष्ट न हुए। उनका उद्देश्य इससे कहीं बहुत अधिक था। उन्होंने सिराजुद्दौला की जगह किसी पिट्ठू को बिठाने का फैसला किया। बंगाल की गद्दी पर युवक नवाब की जगह मीर जाफर को बिठाने की जो साजिश नवाब के दुश्मनों ने रची थी, उसमें शमिल होने के बाद अंग्रेजों ने नवाब के सामने ऐसी मांगें रखीं जिन्हें पूरा करना असंभव था। दोनों पक्षों को लग गया कि उन्हें जल्द ही एक निर्णायक युद्ध लड़ना होगा। 23 जून 1757 को मुर्शिदाबाद से 20 मील दूर प्लासी के मैदान में उनकी सेनाएं आमने-सामने हुईं। प्लासी का यह निर्णायक युद्ध केवल कहने को युद्ध था। अंग्रेज पक्ष के केवल 29 लोग मरे जबकि नवाब के लगभग 500 लोग मारे गए। मीर जाफर और राय दुर्लभ जैसे गद्दारों की कमान में नवाब की काफी सेना लड़ाई में उतरी ही नहीं। नवाब के सैनिकों का एक बहुत छोटा-सा हिस्सा ही मीर मादन और मोहनलाल की अगुआई में बहादुरी से और अच्छी तरह लड़ता रहा। नवाब को मजबूर होकर भागना पड़ा। मगर वह पकड़ा गया और मीर जाफर के बेटे मीरन के हाथों मारा गया।

बंगाल के कवि नवीनचंद्र सेन के अनुसार प्लासी के युद्ध के बाद "भारत के लिए शाश्वत दुख की काली रात" का आरंभ हुआ। अंग्रेजों ने मीर जाफर को बंगाल का नवाब घोषित किया और फिर उससे अपना इनाम मांगने लगे। कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा में मुक्त व्यापार का निर्विवाद अधिकार मिल गया। उसे कलकत्ता के पास चौबीस परगना की जमींदारी भी मिली। कलकत्ता पर हमले के हर्जाने के रूप में मीर जाफर ने कंपनी को और नगर के व्यापारियों को एक करोड़ सतहत्तर लाख रुपए दिए। साथ ही कंपनी के अधिकारियों को 'उपहारों' अर्थात् रिश्वतों

के रूप में बड़ी-रकमें दी गई । उदाहरण के लिए क्लाइव को बीस लाख और वाट्स को दस लाख रुपए से अधिक की रकमें मिलीं । क्लाइव ने बाद में अनुमान लगाया कि पिट्ठू नवाब से कंपनी और उसके नौकरों को तीन करोड़ रुपए से अधिक मिले हैं । इसके अलावा यह भी मान लिया गया कि ब्रिटिश व्यापारियों और अधिकारियों को अपने निजी व्यापार पर कोई कर नहीं देना होगा ।

प्लासी के युद्ध का असीम ऐतिहासिक महत्व रहा । इसने बंगाल तथा अंततः पूरे भारत पर अंग्रेजों के अधिकार का रास्ता खोल दिया । इसने अंग्रेजों की प्रतिष्ठा बढ़ाई और एक ही बार में अंग्रेजों को भारतीय साम्राज्य के प्रमुख दावेदारों की कतार में ला खड़ा किया । बंगाल से प्राप्त भारी राजस्व के सहारे उन्होंने एक शक्तिशाली सेना खड़ी की और इसी से उन्होंने शेष भारत की विजय का खर्च उठाया । बंगाल पर उनके नियंत्रण की अंग्रेजों और फ्रांसीसियों की लड़ाई में निर्णायक भूमिका रही । अंतिम बात यह है कि प्लासी की विजय ने कंपनी और उसके नौकरों को इस योग्य बनाया कि वे बंगाल की असहाय जनता को लूटकर बेपनाह दौलत जमा कर सकें । जैसा कि ब्रिटिश इतिहासकार एडवर्ड थांप्सन और जी. टी. गैरेट ने लिखा है :

> किसी क्रांति का आयोजन करना दुनिया का सबसे लाभदायी खेल समझा गया है । अंग्रेजों के मन में सोने का ऐसा लालच भर गया जो कोर्तेस और पिजारो के काल के स्पेनवासियों के बाद कभी देखने को नहीं मिला था । अब खास तौर पर बंगाल को तब तक चैन नहीं मिलने वाला था जब तक उसके खून की एक-एक बूंद न निचुड़ जाए ।

हालांकि मीर जाफ़र ने कंपनी की सहायता से गद्दी पाई थी, मगर जल्द ही वह इस सौदे पर पछताने लगा । कंपनी के अधिकारियों की उपहार और रिश्वत संबंधी मांगों ने जल्द ही उसका खजाना खाली कर दिया, और इस बारे में पहल खुद क्लाइव ने की । जैसा कि कर्नल मालसन ने लिखा है, कंपनी के अधिकारियों का अब एक ही उद्देश्य था कि "जितना लूट सको, लूटो और यह कि मीर जाफ़र सोने की एक ऐसी थैली है जिसमें जब जी चाहे हाथ डाल लो ।" खुद कंपनी के लालच का कोई मुकाबला न था । कंपनी के डायरेक्टरों ने यह मानकर कि उनके हाथ कामधेनु गाय लग गई है और यह कि बंगाल की दौलत कभी खत्म न होगी, यह आज्ञा जारी की कि बंबई और मद्रास प्रेसिडेंसियों का भी बंगाल खर्च उठाए और अपने राजस्व से कंपनी के भारत से होने वाले पूरे निर्यात का माल खरीदे । कंपनी अब भारत के साथ व्यापार ही नहीं कर रही थी बल्कि बंगाल के नवाब पर अपने नियंत्रण का फायदा उठाकर प्रांत की दौलत भी लूट रही थी ।

मीर जाफ़र को जल्द ही पता चल गया कि कंपनी और उसके अधिकारियों की सारी मांगें पूरी कर पाना असंभव था । अब ये अधिकारी भी अपनी आशाएं पूरी न कर पाने के कारण नवाब की आलोचना करने लगे थे । इसलिए उन्होंने अक्तूबर 1760 में मीर जाफ़र को मजबूर किया कि वह अपने दामाद मीर कासिम के हक में गद्दी छोड़ दे । मीर कासिम ने अपने आकाओं की कृपा के बदले कंपनी को बर्दवान, मिदनापुर और चटगांव जिलों की जमींदारी सौंप दी और बड़े अंग्रेज अधिकारियों को अच्छे-अच्छे उपहार दिए जिनकी कुल कीमत 29 लाख रुपए थी ।

फिर भी मीर कासिम अंग्रेजों की इच्छाएं पूरी न कर सका और जल्द ही वह बंगाल में उनकी स्थिति और उनकी चालों के लिए खतरा बन गया । वह एक योग्य, कुशल और शक्तिशाली शासक था और खुद को विदेशी नियंत्रण से मुक्त कराने पर अड़ा हुआ था । उसने महसूस किया कि अपनी आजादी बनाए रखने के लिए एक भरा हुआ खजाना और एक कुशल सेना की आवश्यकता थी । इसलिए उसने सार्वजनिक अव्यवस्था को संभालने, राजस्व प्रशासन से भ्रष्टाचार मिटाकर अपनी आय बढ़ाने और यूरोपीय तर्ज पर एक आधुनिक और अनुशासित सेना खड़ी करने की कोशिशें कीं । यह सब अंग्रेजों को पसंद न था । उन्हें सबसे ज्यादा नापसंद यह बात थी कि नवाब 1717 के फरमान का कंपनी के नौकरों द्वारा दुरुपयोग रोकने की कोशिश कर रहा था जबकि इन नौकरों की मांग थी कि उनका माल चाहे निर्यात के लिए हो या यहीं उपयोग के लिए, उस पर कोई चुंगी न लगाई जाए । इससे हानि भारतीय व्यापारियों को होती थी क्योंकि उन्हें वे कर भी देने पड़ते थे जिनसे विदेशी पूरी तरह मुक्त थे । इसके अलावा कंपनी के नौकर गैरकानूनी ढंग से अपने भारतीय व्यापारी मित्रों को दस्तकें (पास) बेच देते थे और ये भारतीय इस तरह अंदर

Scanned with CamScanner

(1) प्लासी की लड़ाई —— 23 जून 1757
(2) बक्सर की लड़ाई —— 22 अक्तूबर 1764

मीर कासिम
अवध का नवाब शुजाउद्दौला
शाह आलम द्वितीय

भारत के लिए शाश्वत दुख की काली रात —— नवीनचंद्र सेन
खुली भौं, नेत्रोन्मत्तपूर्ण छूट-पाट का युग —— पर्सीवल स्पियर

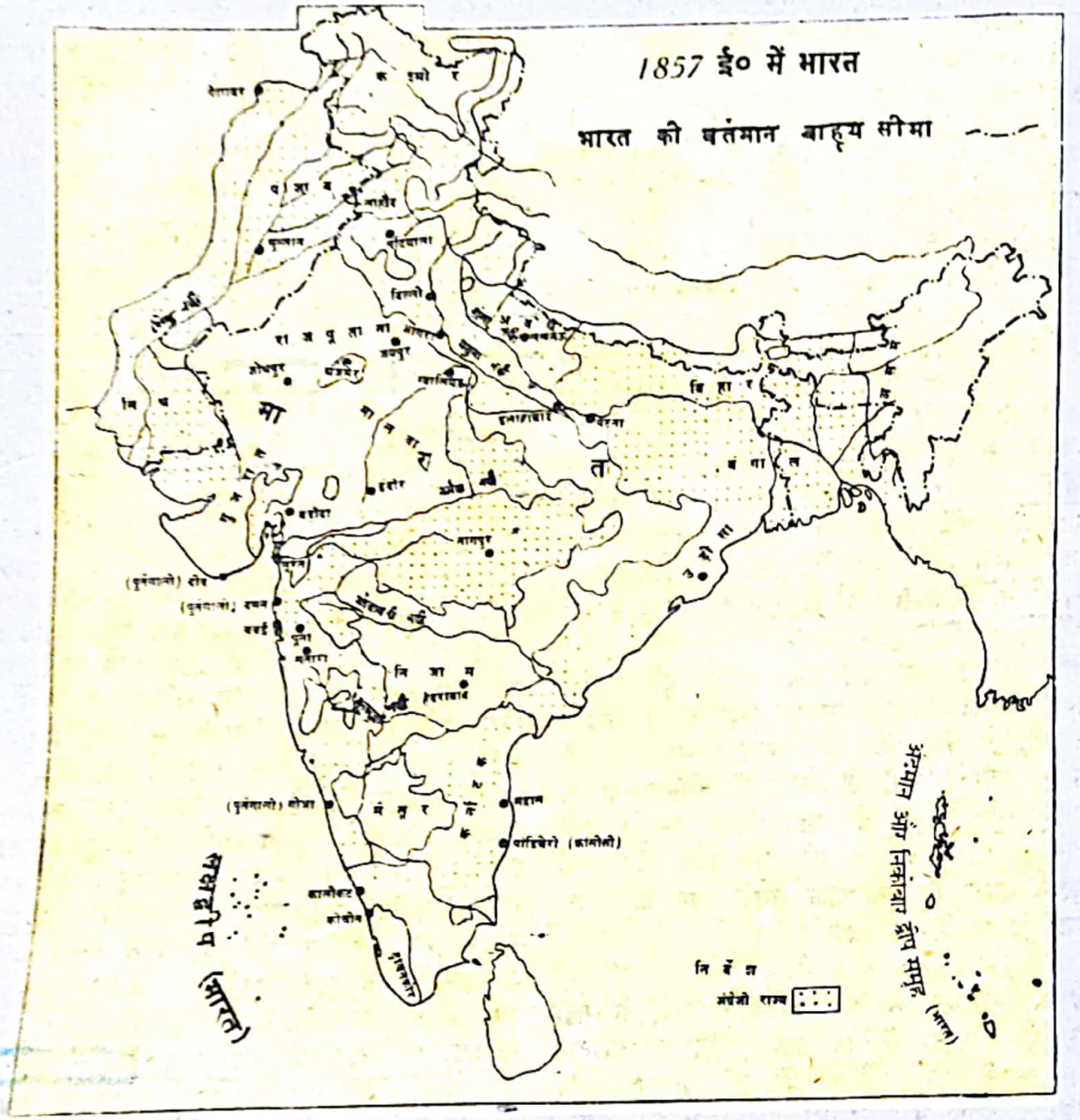

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

© भारत सरकार का प्रतिलिप्यधिकार 1986

समुद्र में भारत का जल प्रदेश उपयुक्त आधार रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

Scanned with CamScanner

के करों के भुगतान से बच जाते थे । इन दुरुपयोगों के कारण ईमानदार भारतीय व्यापारी बेईमानी से भरी प्रतियोगिता में बर्बाद होने लगे और नवाब के हाथ से राजस्व का एक बहुत महत्त्वपूर्ण स्रोत जाता रहा । साथ ही, कंपनी और उसके नौकर भारतीय अधिकारियों और जमींदारों को उपहार और घूस देने के लिए बाध्य करते थे । वे भारतीय दस्तकारों, किसानों और व्यापारियों को अपना माल अंग्रेजों को सस्ता बेचने और अंग्रेजों का माल महंगा खरीदने पर मजबूर करते थे । जो लोग ऐसा न करते उन्हें अकसर कोड़े मारे जाते या जेल भेज दिया जाता । हाल ही में एक ब्रिटिश इतिहासकार पर्सीवल स्पियर ने इस काल को "खुली और निर्लज्जतापूर्ण लूट-पाट का युग" बताया है । वास्तव में अपनी समृद्धि के लिए प्रसिद्ध बंगाल, धीरे-धीरे नष्ट हो रहा था ।

मीर कासिम को लगा कि अगर ये बदमाशियां जारी रहीं तो वह कभी बंगाल को शक्तिशाली न बना सकेगा और न ही खुद को कंपनी के चुंगल से मुक्त कर सकेगा । इसलिए उसने यह कड़ा कदम उठाया कि आंतरिक व्यापार पर सभी महसूल खत्म कर दिए और इस तरह अपनी प्रजा को वे छूटें दे दीं जो अंग्रेजों ने बलपूर्वक प्राप्त की थीं । मगर विदेशी व्यापारी अपने और भारतीय व्यापारियों के बीच समानता हो, यह बर्दाश्त करने को अब तैयार न थे । उन्होंने भारतीय व्यापारियों पर दोबारा महसूल लगाए जाने की मांग की । एक और लड़ाई अब सामने नजर आ रही थी । सच्चाई यह थी कि अब बंगाल के दो स्वामी नहीं हो सकते थे । मीर कासिम तो यह समझता था कि वह एक स्वतंत्र शासक है, मगर अंग्रेज यह मांग कर रहे थे कि वह उनके हाथों की कठपुतली बना रहे क्योंकि उन्होंने ही उसे गद्दी पर बिठाया था ।

अनेक लड़ाइयों के बाद मीर कासिम 1763 में हरा दिया गया । तब वह अवध भाग गया जहां उसने अवध के नवाब शुजाउद्दौला और भगोड़े मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय के साथ एक समझौता किया । कंपनी की सेना के साथ इन तीनों सहयोगियों की मुठभेड़ 22 अक्तूबर 1764 को बक्सर में हुई जिसमें ये तीनों हारे । यह भारतीय इतिहास के सबसे निर्णायक युद्धों में से एक था क्योंकि इसने दो बड़ी भारतीय शक्तियों की सयुक्त सेना पर अंग्रेजी सेना की श्रेष्ठता सिद्ध कर दी । इस युद्ध ने अंग्रेजों को बंगाल, बिहार और उड़ीसा का निर्विवाद

नवाब शुजाउद्दौला

शासक बना दिया और अवध भी उनकी दया का मुहताज हो गया ।

इस बीच 1765 में क्लाइव बंगाल का गवर्नर बनकर लौट आया था । उसने बंगाल में सत्ता पाने और शासन के सारे अधिकार नवाब से छीनकर कंपनी को दिलाने का यह अवसर न चूकने का फैसला किया । 1763 में अंग्रेजों ने मीर जाफर को दोबारा नवाब बना दिया था और कंपनी तथा उसके अधिकारियों के लिए बड़ी-बड़ी रकमें ली थीं । मीर जाफर के मरने पर उन्होंने उसके दूसरे बेटे निजामुद्दौला को गद्दी पर बिठाया और बदले में उससे 20 फरवरी 1765 को एक नई संधि पर दस्तखत करा लिए । इस संधि के अनुसार नवाब को अपनी अधिकांश सेना भंग कर देना था और बंगाल का शासन एक नायब सूबेदार के सहारे चलाना था जिसकी नियुक्ति कंपनी करती और जिसे कंपनी की

Scanned with CamScanner

(1) इलाहाबाद का किले में 6 वर्षों तक 26 लाख रु, कड़ा और इलाहाबाद जिले की दीवानी
(2) बंगाल में प्रशासन की दोहरी व्यवस्था — 1765 — द्वैध शासन
(3) वॉरेन हेस्टिंग्स (1772-85) → कार्नवालिस (1786-93)
(4) वेलेजली (1798-1805)

स्वीकृति के बिना नहीं हटाया जा सकता था । इस तरह कंपनी ने बंगाल के प्रशासन (निजामत) पर पूरा अधिकार जमा लिया । कंपनी की बंगाल कौंसिल के सदस्यों ने एक बार फिर नए नवाब से लगभग 15 लाख रुपए झटक लिए ।

शाह आलम द्वितीय अभी भी साम्राज्य का नाममात्र का प्रमुख था । उससे कंपनी ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी (अर्थात राजस्व वसूल करने का अधिकार) प्राप्त कर लिया । इस तरह बंगाल के ऊपर उसके नियंत्रण को कानूनी मान्यता मिल गई और इस सबसे समृद्ध भारतीय प्रांत का पूरा राजस्व उसके हाथों में आ गया । बदले में कंपनी ने शाह आलम द्वितीय को 26 लाख रुपए दिए और उसे कोरा और इलाहबाद जिले भी जीतकर दे दिए । सम्राट 6 वर्षों तक इलाहबाद के किले में अंग्रेजों का लगभग कैदी बनकर रहा ।

अवध के नवाब शुजाउद्दौला को भी लड़ाई के हर्जाने के रूप में कंपनी को पचास लाख रुपए देने पड़े । इसके अलावा, दोनों ने एक संधि पर हस्ताक्षर किए । इसके अनुसार अगर नवाब पर बाहरी हमला होता तो कंपनी उसकी सहायता करती, शर्त यह थी कि नवाब को अपनी सहायता के लिए भेजी गई सेना के बदले में कंपनी को धन देना पड़ता । इस सन्धि के द्वारा अवध का नवाब भी कंपनी का आश्रित बनकर रह गया ।

बंगाल के प्रशासन की दोहरी व्यवस्था

1765 ई. से ईस्ट इण्डिया कंपनी बंगाल की वास्तविक स्वामी अवश्य ही हो गई । कंपनी की सेना का बंगाल पर एकछत्र नियंत्रण स्थापित हो गया और राजनीति की संपूर्ण शक्ति इसके हाथों में आ गई । अपनी आंतरिक और बाह्य सुरक्षा के लिए नवाब कंपनी पर पूरी तरह आश्रित हो गया था ।

दीवान के रूप में कंपनी सीधे ही स्वयं राजस्व वसूल करने लगी । कंपनी को अपना उप-सूबेदार नामांकित करने का अधिकार मिल गया । इस तरह कम्पनी का निजामत अथवा पुलिस और न्यायिक शक्तियों पर पूरा नियन्त्रण स्थापित हो गया । इतिहास में इस व्यवस्था को 'दोहरी' या 'द्वैध' सरकार कहा जाता है । यह व्यवस्था अंग्रेजों के लिए बहुत लाभकारी सिद्ध हुई । इस प्रकार कंपनी का सत्ता पर पूरा अधिकार हो गया जबकि उनके ऊपर किसी प्रकार की जिम्मेदारी नहीं थी । प्रशासन का दायित्व नवाब और उसके पदाधिकारियों पर था हालांकि इनका निर्वाह करने की शक्ति उनके पास नहीं रही । अब शासन की विफलताओं के लिए भारतीयों पर दोषारोपण किया जा सकता था जबकि इससे प्राप्त लाभों का उपयोग कंपनी करती थी । बंगाल की जनता के लिए यह बहुत क्लेशपूर्ण और घातक परिस्थिति थी क्योंकि उनके हितों की रक्षा न तो कंपनी ही करती थी न नवाब ।

कंपनी के अधिकारी बंगाल की जनता पर मनमाने अत्याचार कर रहे थे और ये अत्याचार दिन-ब-दिन बढ़ते ही जा रहे थे । क्लाइव के शब्दों में :

"मैं केवल इतना ही कहूँगा कि स्वेच्छाचारी शासन, भ्रांति, घूसखोरी, भ्रष्टाचार और जबरन धन खसोटने का ऐसा दृश्य बंगाल के अलावा किसी भी अन्य देश में कभी देखा-सुना नहीं गया । इतनी अन्यायपूर्ण लूट-खसोट से कंपनी बेशुमार संपत्ति बटोरने में जुटी हुई थी । जब से मीर जाफ़र ने दो बार सूबेदारी संभाली थी, बंगाल, बिहार और उड़ीसा इन तीनों प्रांतों से 30 लाख स्टर्लिंग पौंड की राजस्व वसूली का काम सीधे कंपनी के अधिकारियों की मुट्ठी में आ गया था । कंपनी के अधिकारी नवाब से लेकर सत्ता से जुड़े छोटे से छोटे ज़मीदारों तक प्रत्येक व्यक्ति पर शुल्क थोप देते थे और उसे ज़बरदस्ती वसूल करते थे ।"

कंपनी के पदाधिकारी अपनी ओर से बंगाल की संपदा को दोनों हाथों से बटोर रहे थे जिसके परिणामस्वरूप बंगाल कंगाली के कगार पर आ पहुँचा । कंपनी ने भारतीय माल खरीदने के लिए इंगलैंड से धन भेजना बंद कर दिया । इसके स्थान पर वे बंगाल से प्राप्त राजस्व से ही भारतीय माल खरीदते और इसे विदेशों में बेचते । इस धन को कंपनी की लागत-पूँजी समझा जाता था और इसे कंपनी के 'लाभ' के रूप में स्वीकार किया जाता था । सबसे बढ़कर बात यह थी कि 'मुनाफे' के इस धन में से ब्रिटिश सरकार भी अपना हिस्सा चाहती थी । 1767 ई. में ब्रिटिश सरकार ने कंपनी को चार लाख पौंड का भुगतान करने का आदेश दिया ।

(1) कंपनी, बिहार, उड़ीसा की दीवानी — शाह आलम II
(2) अवध के नवाब ने कंपनी को लड़ाई के हर्जाने के रूप में — 50 लाख रुपये

Scanned with CamScanner

(1) मराठा, मैसूर, हैदराबाद ——— 1782 - सल्बई की संधि
(2) 1767 में ब्रिटिश सरकार ने कंपनी पर लाख पौंड अधिकार करने का आदेश दिया। प्रथम अंग्रेज मराठा युद्ध

1766-1767 और 1768 ई में बंगाल से लगभग 57 लाख पौंड की धन-निकासी हुई । इस 'दोहरे' शासन का दुष्परिणाम यह हुआ कि बंगाल से धन-निकासी के फलस्वरूप यह दुर्भाग्यशाली प्रांत दरिद्र हो गया और इसकी दशा जर्जर हो गई । 1707 ई. में बंगाल में अकाल पड़ा। यह अकाल मानव जाति के इतिहास में पड़े भयंकर अकालों में से एक सिद्ध हुआ । लाखों की संख्या में लोगों की मृत्यु हुई और बंगाल की एक-तिहाई जनसंख्या को इस विध्वंस के भीषण परिणाम भुगतने पड़े । हालांकि यह अकाल वर्षा के अभाव के कारण पड़ा था, इसका विनाशकारी प्रभाव कंपनी के नीतियों के फलस्वरूप बहुत बढ़ गया था।

वारेन हेस्टिंग्ज (1772-85) और कार्नवालिस (1786-93) के युद्ध

1772 तक ईस्ट इंडिया कंपनी भारत की एक प्रमुख शक्ति बन चुकी थी, और अब आगे-विजय से पहले इसके इंग्लैंड में बैठे डायरेक्टर और भारत में इसके अधिकारी बंगाल में अपनी स्थिति को मजबूत बना लेना चाहते थे । फिर भी भारतीय राजाओं के आपसी मामलों में दखल देने की उनकी आदत ने और इलाका तथा धन के उनके लालच ने जल्द ही उनको अनेक युद्धों में उलझा दिया ।

1766 में उन्होंने मैसूर के हैदर अली पर हमले में हैदराबाद के निजाम का साथ दिया । पर हैदर अली ने मद्रास कौंसिल को अपनी शर्तों पर शांति की संधि करने के लिए मजबूर कर दिया । फिर 1775 में अंग्रेजों का मराठों से टकराव हुआ । तब मराठों में शासन के लिए एक कड़ा संघर्ष चल रहा था जिसमें बालक पेशवा माधवराव द्वितीय के समर्थक नाना फड़नीस के नेतृत्व में एक ओर थे और रघुनाथ राव के समर्थक दूसरी ओर थे । बंबई के ब्रिटिश अधिकारियों ने रघुनाथ राव की ओर हस्तक्षेप का निश्चय किया । उन्हें आशा थी कि उनके देशवासियों ने बंगाल और मद्रास में जो कुछ कर-दिखाया था, वैसा ही कुछ काम वे कर सकेंगे और नतीजे में उनके धन-लाभ होगा । इस कारण वे मराठों के साथ एक लंबी लड़ाई में उलझ गए जो 1775 से 1782 तक चली

यह भारत में ब्रिटिश शक्ति के लिए बहुत अशुभ घड़ी थी । सभी मराठा सरदार पेशवा और उसके प्रधानमंत्री नाना फड़नीस की ओर से एक हो गए । दक्षिण भारत के शासक अपने बीच अंग्रेजों की उपस्थिति से बहुत दिनों से चिढ़े हुए थे, और इस घड़ी का फायदा उठाकर हैदर अली और निजाम ने कंपनी के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया । इस तरह अब अंग्रेजों को मराठों, मैसूर और हैदराबाद के शक्तिशाली गठजोड़ का सामना करना पड़ रहा था । इसके अलावा 1776 में अमरीका की जनता ने विद्रोह कर दिया था और इस लड़ाई में अंग्रेजों को हार पर हार हो रही थी । फ्रांसीसी अपनी पुराने प्रतिद्वंद्वियों की इन कठिनाइयों का फायदा उठाना चाहते थे और उसका भी मुकाबला अंग्रेजों को करना पड़ रहा था।

पर भारत में इस समय अंग्रेजों का नेतृत्व जोशीला और अनुभवी गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्ज कर रहा था । उसने पूरे विश्वास और दृढ़ता के साथ अपने कदम उठाए । युद्ध में जीत किसी पक्ष की नहीं हुई और युद्ध थम-सा गया । 1782 की सल्बई की संधि के साथ शांति स्थापित हुई । इस संधि के अनुसार स्थिति को जैसी वह थी, वैसी ही बनाए रखना था । इससे अंग्रेज भारतीय शासकों की मिली-जुली शक्ति का सामना करने से बच गए ।

इस युद्ध में जिसे प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध कहा जाता है, किसी की जीत नहीं हुई । मगर इससे अंग्रेज 20 वर्षों के लिए मराठों की ओर से निश्चित हो गए जो तब भारत की सबसे बड़ी शक्ति थे । इस समय का लाभ उठाकर अंग्रेजों ने बंगाल प्रेसिडेंसी में अपनी स्थिति को मजबूत बनाया जबकि मराठे आपसी झगड़ों में अपनी शक्ति बर्बाद करते रहे । इसके अलावा सल्बई की संधि के कारण अंग्रेज मैसूर पर दबाव डालने में सफल रहे, क्योंकि मराठों ने उनसे वादा किया कि हैदर अली से अपनी खोई हुई जमीन वापस लेने में वे अंग्रेजों की सहायता करेंगे । अंग्रेज फिर एक बार भारतीय शासकों में फूट डालने में सफल रहे ।

इस बीच 1780 में हैदर अली से युद्ध एक बार फिर आरंभ हो गया । अपने पुराने कारनामे दोहराते हुए हैदरअली ने कर्नाटक में अंग्रेज सेनाओं को बार-बार हराया और उन्हें बड़ी संख्या में आत्मसमर्पण करने पर बाध्य कर दिया । जल्द ही लगभग पूरा कर्नाटक उसके कब्जे में आ गया । पर अंग्रेजों की शक्ति और कूटनीति ने एक बार फिर उन्हें बचा लिया । वारेन हेस्टिंग्ज ने निजाम को गुंटूर का जिला देकर तोड़ लिया और उसे ब्रिटिश-

गुंटूर - निजाम

Scanned with CamScanner

(1) वेलेजली - तीन आंग्ल (1) सहायक संधि (2) खुला युद्ध (3) शासकों का इलाका हड़पना
(2) अपने सहयोगियों को बकरों की तरह तृप्तक खिला-पिलाकर मोटा रखने की प्रथा भी जबतक ने जिबह करने के काबिल न हो जाए।

विरोधी गठजोड़ से अलग करा दिया। 1781-82 में उसने मराठों से शांति-समझौता कर लिया और इस तरह उसकी सेना का एक बड़ा भाग मैसूर के साथ युद्ध के लिए मुक्त हो गया। जुलाई 1781 में आयरकट की कमान में ब्रिटिश सेना ने पोर्टो नोवो में हैदर अली को हराकर मद्रास को बचा लिया। दिसंबर 1782 में हैदर अली की मृत्यु के बाद उसके बेटे टीपू सुल्तान ने युद्ध जारी रखा। चूंकि दोनों में से कोई भी पक्ष दूसरे को हराने की स्थिति में न था, इसलिए उन्होंने मार्च 1784 में शांति-संधि कर ली और एक-दूसरे को जीते हुए सारे इलाके लौटा दिए इस तरह यह तो सिद्ध हो गया कि अंग्रेज अभी इतने कमजोर हैं कि मराठों या मैसूर को नहीं हरा सकते, पर भारत में अपने बल-बूते पर खड़े होने की योग्यता उन्होंने निश्चित ही दिखा दी थी।

मैसूर के साथ अंग्रेजों का तीसरा टकराव उनके लिए अधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ। 1784 की संधि ने टीपू और अंग्रेजों के झगड़े की जड़ को समाप्त नहीं किया था, बल्कि युद्ध को केवल टाल भर दिया था। ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी टीपू के जानी दुश्मन थे। वे उसे दक्षिण में अपना सबसे शक्तिशाली शत्रु समझते थे जो दक्षिण भारत की जीत में उनके लिए प्रमुख बाधक बना हुआ था। टीपू भी अंग्रेजों से सख्त नफरत करता था और अपनी स्वाधीनता के लिए सबसे बड़ा खतरा समझकर उन्हें भारत से बाहर खदेड़ने पर अड़ा हुआ था। दोनों के बीच 1789 में फिर युद्ध भड़क उठा, और अंततः 1792 में टीपू की हार हुई। श्रीरंगपटटम में हुई संधि के अनुसार टीपू ने अपना आधा राज्य अंग्रेजों और उसके सहयोगियों को दे दिया और 330 लाख रुपए हर्जाना भी दिया।

लार्ड वेलेजली के काल में अंग्रेजों का प्रसार

भारत में ब्रिटिश शासन का दूसरा बड़ा प्रसार लार्ड वेलेजली (1798-1805) के काल में हुआ। वह 1798 में ऐसे समय में भारत आया था जब अंग्रेज पूरी दुनिया में फ्रांस के साथ जिंदगी और मौत की लड़ाई लड़ रहे थे।

इस समय तक अंग्रेजों की नीति यह थी कि अपने लाभों और साधनों की स्थिति को सुदृढ़ बनाया जाए, और नए इलाके तभी जीते जाएं जब बड़े भारतीय शासकों को दुश्मन बनाए बिना सुरक्षापूर्वक ऐसा कर सकना संभव हो। वेलेजली ने फैसला किया कि समय आ चुका है कि जितने अधिक भारतीय राज्य संभव हों, ब्रिटिश नियंत्रण में लाए जाएं। 1797 तक दो प्रमुख भारतीय शक्तियां अर्थात् मैसूर और मराठों की शक्ति क्षीण हो चुकी

(1) पोंटो नोवो की आयरकट-हैदर - 1784 - शांति संधि
(2) श्रीरंगपटटम की संधि - 1792 टीपू - 1/2 आधा राज्य (3) 330 लाख रु हर्जाना देना

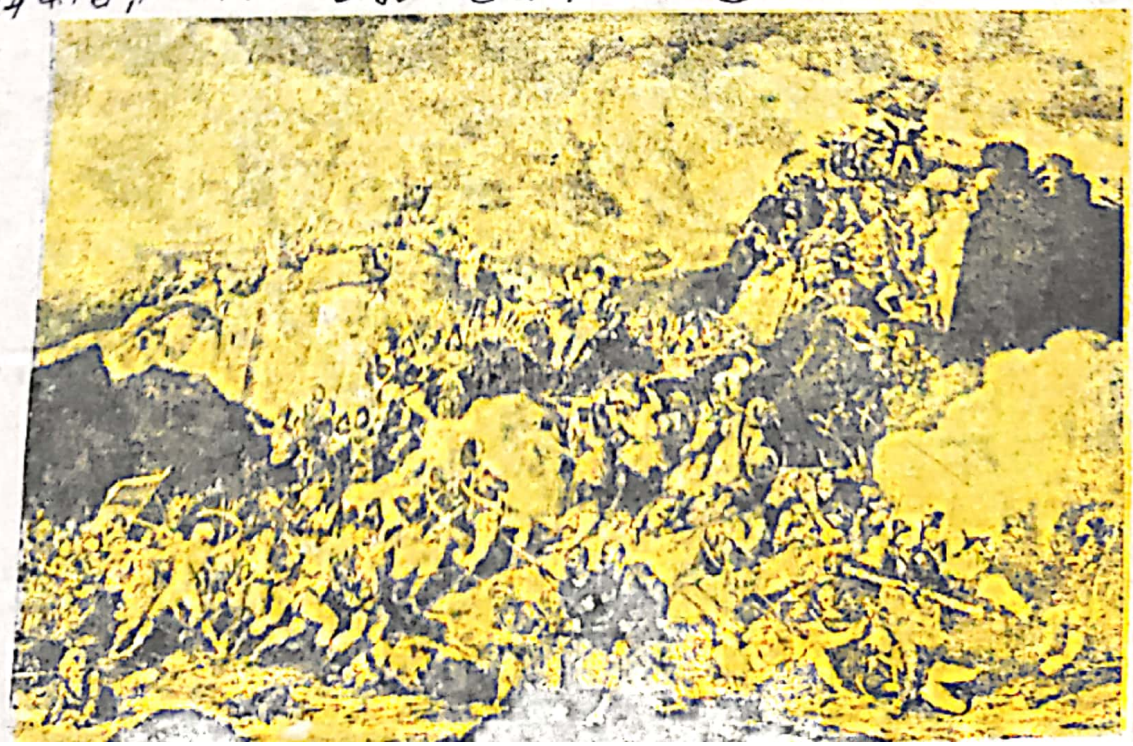

Scanned with CamScanner

वेलेजली — सहायक संधि
खुला युद्ध
इलाका हड़पना

थी । भारत में राजनीतिक परिस्थितियां प्रसार के लिए अनुकूल थीं क्योंकि प्रसार करना अब आसान भी था और लाभप्रद भी ।

अपने राजनीतिक उद्देश्य पूरे करने के लिए वेलेजली ने तीन उपायों को सहारा लिया सहायक संधि प्रथा, खुला युद्ध और पहले से अधीन बनाए जा चुके शासकों का इलाका हड़पना । किसी भारतीय शासक को पैसा लेकर ब्रिटिश सेना की मदद देने की नीति तो बहुत पुरानी थी, फिर भी वेलेजली ने इस नीति को एक निश्चित रूपरेखा दी और इसका उपयोग भारतीय शासकों को कंपनी के अधीन बनाने के लिए किया । उसकी सहायक संधि प्रथा की नीति के अनुसार किसी सहयोगी भारतीय राज्य के शासक को ब्रिटिश सेना अपने राज्य में रखनी पडती थी तथा उसके रख-रखाव के लिए अनुदान पड़ता था । यह सब कहने को उसकी सुरक्षा के लिए किया जाता था, मगर वास्तव में यह उस भारतीय शासक से कंपनी को खिराज दिलवाने का एक ढंग था । कभी-कभी कोई शासक वार्षिक अनुदान न देकर अपने राज्य का कोई भाग दे देता था । सहायक संधि के अनुसार आम तार पर भारतीय शासक को यह भी मानना पड़ता था कि वह अपने दरबार में एक ब्रिटिश रेजीडेंट रखेगा, अंग्रेजों की स्वीकृति के बिना किसी और यूरोपीय को अपनी सेवा में नहीं रखेगा, और गवर्नर-जनरल से सलाह किए बिना किसी दूसरे भारतीय शासक से कोई वार्ता नहीं करेगा । इसके बदले अंग्रेज उस शासक की दुश्मनों से रक्षा करने का वचन देते । वे सहयोगी के अंदरूनी मामलों में दखल न देने का भी वादा करते, पर यह वादा ऐसा था जिसे कभी-कभी ही पूरा किया गया ।

वास्तव में सहायक संधि पर हस्ताक्षर करके कोई भारतीय राज्य अपनी स्वाधीनता लगभग गंवा ही बैठता था । वह आत्म रक्षा के, कूटनीतिक संबंध बनाने के, विदेशी विशेषज्ञ रखने के तथा पड़ोसियों के साथ आपसी झगड़े के अधिकार ही खो बैठता था । वास्तव में उस भारतीय शासक की बाहरी मामलों में सारी प्रभुता समाप्त हो जाती और वह ब्रिटिश रेज़ीडेंट के अधिकाधिक अधीन होता जाता जो राज्य के रोजमर्रा के प्रशासन में हस्तक्षेप करता रहता था । इसके अलावा इस प्रथा के कारण सुरक्षा प्राप्त राज्य अंदर से खोखला होने लगता था । अंग्रेजों की दी हुई सहायक सेना का खर्च बहुत अधिक होता था और वास्तव में वह उस राज्य की क्षमता से काफी बाहर होता था । मनमाने ढंग से तय किए गए और बनावटी ढंग से बढ़ाए जाने वाले इस अनुदान के कारण उस राज्य की अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न और जनता निर्धन हो जाती थी । इस सहायक संधि प्रथा के कारण सुरक्षा प्राप्त राज्य की सेनाएं भी भंग कर दी गई । लाखों सैनिक और अधिकारी अपनी पैतृक जीविका से वंचित हो गए जिससे देश में बेदहाली और गरीबी फैल गई । इसके अलावा सुरक्षाप्राप्त राज्यों के शासक अपनी जनता के हितों को अनदेखा तथा उनका दमन करने लगे क्योंकि अब उन्हें जनता का डर नहीं रह गया था । चूंकि अंग्रेजों ने उन्हें अंदरूनी और बाहरी दुश्मनों से रक्षा का वचन दिया था, इसलिए उनमें अब अच्छे शासक बनने का कोई लोभ नहीं रह गया ।

दूसरी तरफ सहायक संधि की प्रथा अंग्रेजों के लिए अत्यंत लाभदायक थी । अब वे भारतीय राज्यों के खर्च पर एक बड़ी सेना रख सकते थे । अब वे अपने खुद के क्षेत्र से बहुत दूर लड़ाइयां लड़ सकते थे क्योंकि कोई भी युद्ध होता तो या तो उनके सहयोगियों के क्षेत्र में होता या उनके शत्रुओं के । वे अपने सुरक्षा प्राप्त सहयोगी के रक्षा और विदेशी संबंधों के मामलों पर पूरा नियंत्रण रख रहे थे, उसकी जमीन पर एक शक्तिशाली सेना रखते थे, और जब भी चाहे उसे 'अयोग्य' घोषित करके उसका शासन समाप्त कर उसके क्षेत्र को हड़प सकते थे । जहां तक अंग्रेजों का सवाल था, सहायक संधि की यह प्रथा, एक ब्रिटिश लेखक के शब्दों में, "अपने सहयोगियों को बकरों की तरह तब तक खिला-पिलाकर मोटा रखने की प्रथा थी जब तक वे जिबह करने के काबिल न हो जाए ।"

लार्ड वेलेजली ने 1798 और 1800 में हैदराबाद के निजाम के साथ सहायक संधियां कीं । सहायक सेनाओं के खर्च के नाम पर नगद पैसा देने के बजाए निजाम ने कंपनी को अपने राज्य का एक भाग दे दिया ।

1801 में अवध के नवाब को सहायक संधि के लिए मजबूर किया गया । एक बड़ी सहायक सेना के बदले में नवाब को मजबूर होकर अपना लगभग आधा राज्य अंग्रेजों को देना पड़ा जिसमें रूहेलखंड का इलाका और गंगा-यमुना का दोआबा आ जाते थे । उसकी अपनी सेना लगभग पूरी तरह भंग कर दी गई और अंग्रेजों को यह अधिकार मिल गया कि वे उसके राज्य के किसी भी भाग में अपनी सेना तैनात कर सकें ।

(1) निजाम - 1800 → अवध - 1801 → कर्नाटक - 1801

Scanned with CamScanner

(1) इसे. नाभा. नवासे. पुत्र
(2) काफिरों का दयनीय दास बनकर और उनके पेंशन प्राप्त राजाओं और नवाबों की सूची में शामिल होकर जीने से अच्छा एक योद्धा की तरह मर जाना है।

वेलेजली मैसूर, कर्नाटक और सूरत के साथ और भी कड़ाई से पेश आया। निश्चित ही मैसूर का टीपू सुल्तान कभी सहायक संधि के लिए तैयार नहीं हुआ। उल्टे उसे 1792 में अपना जो आधा राज्य देना पड़ा था, उसी को वह कभी भूल न सका। वह अंग्रेजों के साथ अपने अवश्यंभावी युद्ध के लिए अपनी सेना को लगातार मजबूत बनाता रहा। उसने क्रांतिकारी फ्रांस के साथ गठजोड़ की बात भी चलाई। उसने एक ब्रिटिश-विरोधी गठजोड़ बनाने के लिए अफगानिस्तान, अरब और तुर्की को भी अपने दूत भेजे।

ब्रिटिश सेना ने 1799 में टीपू पर हमला किया, और एक संक्षिप्त मगर भयानक युद्ध के बाद फ्रांसीसी सहायता पहुंचने के पहले ही उसे हरा दिया। टीपू ने अभी भी गिड़गिड़ाकर शांति की भीख मांगने से इनकार कर दिया। उसने गर्वपूर्वक घोषणा की कि "काफिरों का दयनीय दास बनकर और उनके पेंशन प्राप्त राजाओं और नवाबों की

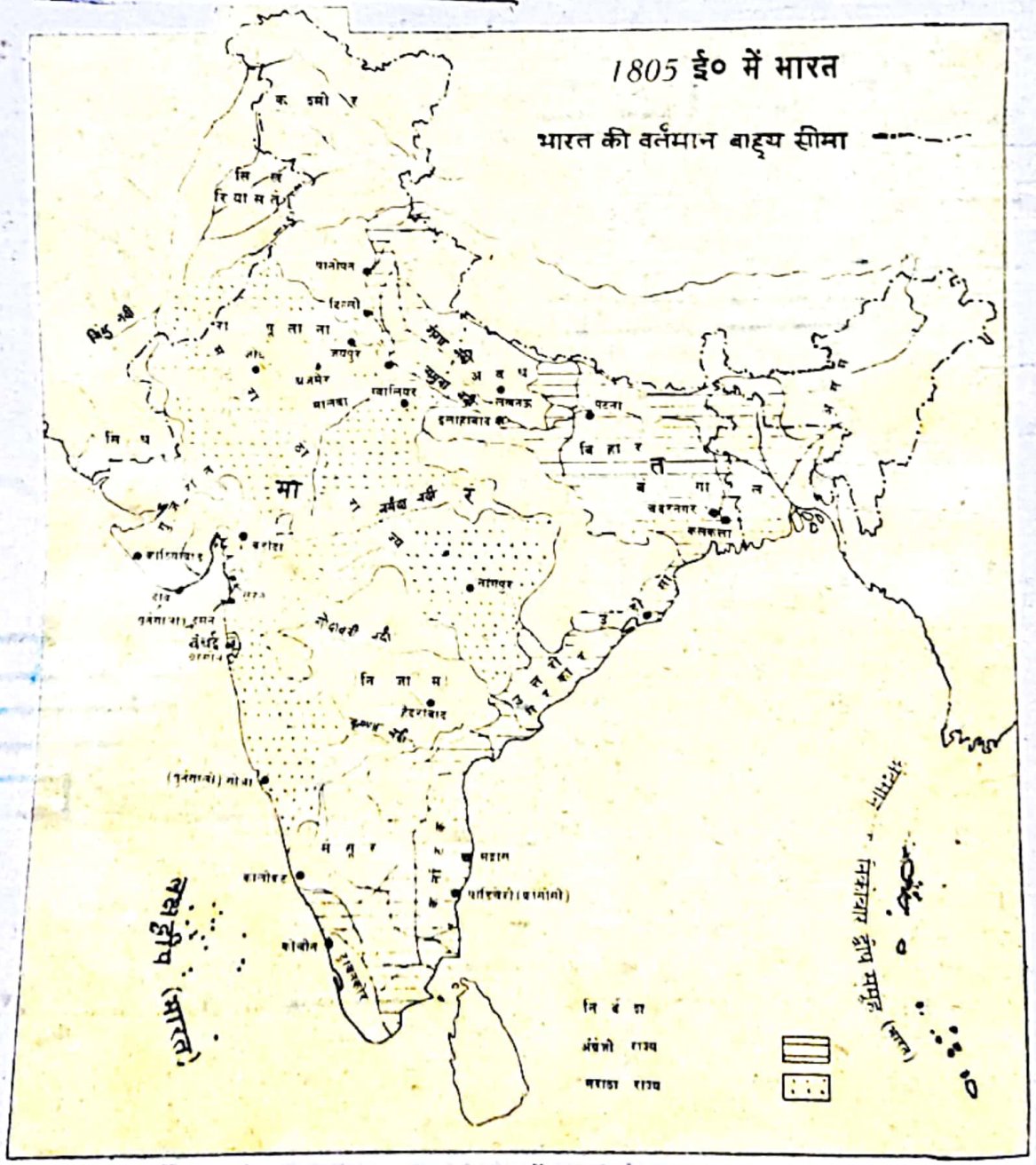

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

© भारत सरकार का प्रतिलिप्यधिकार, 1986

समुद्र में भारत का जल प्रदेश उपयुक्त आधार रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

Scanned with CamScanner

सभी में शामिल होकर जीने से अच्छा एक योद्धा की तरह मर जाना है।" अपनी राजधानी श्रीरंगपट्टम की रक्षा करते हुए वह 4 मई 1799 को बहादुरी की मौत मरा। उसकी सेना अंत तक वफादार बनी रही।

टीपू का लगभग आधा राज्य अंग्रेजों और उनके सहयोगी निजाम के बीच बंट गया। मैसूर राज्य का शेष भाग उन राजाओं के वंशजों को वापस दे दिया गया जिनसे हैदर अली ने राज्य छीना था। नए राजा को मजबूर करके एक विशेष सहायक संधि पर हस्ताक्षर कराए गए कि गवर्नर-जनरल आवश्यकता समझे तो राज्य का शासन खुद संभाल ले। वास्तव में मैसूर को कंपनी पर पूरी तरह आश्रित बना दिया गया।

1801 में लार्ड वेलेजली ने कर्नाटक के पिट्ठू नवाब पर एक नई संधि लाद दी और उसे मजबूर किया कि वह पेंशन लेकर अपना राज्य कंपनी को सौंप दे। अब मैसूर से मलाबार समेत जो क्षेत्र छीने गए थे, उनमें कर्नाटक को मिलाकर मद्रास प्रेसिडेंसी बनाई गई जो 1947 तक जारी रही। इसी तरह तंजौर और सूरत राज्य भी हड़प लिए गए और उनके शासकों को पेंशन देकर किनारे कर दिया गया।

अब एक प्रमुख शक्ति के रूप में केवल मराठे ही ब्रिटिश प्रभुत्व से बचे हुए थे। अब वेलेजली ने उनकी ओर ध्यान देना आरंभ किया और उनके अंदरूनी मामलों में खुलकर हस्तक्षेप करने लगा।

इस समय मराठा साम्राज्य पांच बड़े सरदारों का एक महासंघ था। ये थे पूना का पेशवा, बड़ौदा का गायकवाड़, ग्वालियर का सिंधिया, इंदौर का होल्कर और नागपुर का भोंसले। पेशवा इस महासंघ का नाममात्र का प्रमुख था। लेकिन ये सभी सरदार आपसी झगड़ों में कट-मर रहे थे और बढ़ते हुए विदेशियों के खतरे की ओर से बेखबर थे।

वेलेजली ने बार-बार पेशवा और सिंधिया के आगे सहायक संधि का प्रस्ताव रखा था। मगर दूरदर्शी नाना फड़नीस ने इस जाल में फंसने से इंकार कर दिया था। मगर 25 अक्तूबर 1802 को जब दीवाली के दिन होल्कर ने पेशवा और सिंधिया की मिली-जुली सेना को हरा दिया तो कायर पेशवा बाजीराव द्वितीय भागकर अंग्रेजों की शरण में जा पहुंचा और वर्ष 1802 के अंतिम दिन उसने बसाई में एक सहायक संधि पर हस्ताक्षर कर दिए।

नाना फड़नवीस

यह जीत कुछ आसानी से ही मिल गई थी। मगर एक बात पर वेलेजली गलत था : अभिमानी मराठा सरदार बिना लड़ाई के अपनी स्वाधीनता की परंपरा छोड़ने वाले नहीं थे। मगर संकट की इस घड़ी में भी वे साझे शत्रु के खिलाफ एकजुट नहीं हुए। जब सिंधिया और भोंसले अंग्रेजों से लड़ रहे थे, तब होल्कर चुपचाप दूर पड़ा था और गायकवाड़ अंग्रेजों की मदद कर रहा था। फिर जब होल्कर

राजघाट की संधि — 1806 — होल्कर
अप्पा साहब — नागपुर
पेशवा — बिठूर
(1) आर्थर वेलेजली — असाय, अरगाँव — 1803 — सिंधिया भोंसले
(2) लार्ड लेक — लसवाड़ी 1803 — सिंधिया
(3) होल्कर के सहयोगी भरतपुर के राजा

ने तलवार उठाई तो भोंसले और सिंधिया ने अपना बदला चुकाया।

दक्षिण में आर्थर वेलेजली की कमान में ब्रिटिश सेना ने असाय में सितंबर 1803 में और फिर अरगांव में नवंबर में सिंधिया और भोंसले की मिली-जुली सेना को हराया। उत्तर मे लार्ड लेक ने नवंबर की पहली तारीख को लसवाड़ी में सिंधिया की सेना को तहस-नहस कर दिया और अलीगढ़, दिल्ली और आगरा पर कब्जा कर लिया। भारत का अंधा सम्राट एक बार फिर कंपनी का पेंशनखोर हो गया। मित्र मराठा राज्यों को शांति की बातचीत चलानी पड़ी। अब वे दोनों कंपनी के अधीनस्थ सहयोगी बन गए। उन्होंने अंग्रेजों को अपने राज्यों के कुछ भाग दिए, अपने दरबारों में अंग्रेज रेजिडेंट रखे और अंग्रेजों की सहमति के बिना यूरोपीयों को सेवा में न रखने का वचन दिया। अब उड़ीसा के समुद्र तट पर और गंगा-यमुना के दोआबा पर अंग्रेजों का पूर्ण अधिकार हो गया। पेशवा उनके हाथों की एक कठपुतली बनकर रह गया।

वेलेजली ने जब अपना ध्यान होल्कर पर केंद्रित किया। पर यशवंतराव होल्कर अंग्रेजों के लिए काफी भारी साबित हुआ और अंत तक ब्रिटिश सेना से लड़ता रहा। होल्कर के सहयोगी भरतपुर के राजा ने लेक को, जब उसने राजा के किले को तोड़ने की असफल कोशिश की, भारी नुकसान पहुंचाया। इसके अलावा होल्कर परिवार के साथ अपनी पुरानी दुश्मनी भुलाकर सिंधिया उससे हाथ मिलाने की बात सोचने लगा। दूसरी ओर, ईस्ट इंडिया कंपनी के शेयर होल्डरों को पता चला कि युद्ध के जरिए प्रसार की नीति बहुत महंगी पड़ रही थी और उनका मुनाफा इससे कम हो रहा था। कंपनी का कर्ज जो 1797 में 170 लाख पौंड था 1806 तक बढ़कर 310 लाख पौंड हो चुका था। इसके अलावा ब्रिटेन के वित्तीय साधन ऐसे समय में खत्म हो रहे थे जब नेपोलियन यूरोप में एक बार फिर एक बड़ा खतरा बन रहा था। ब्रिटिश राजनेताओं और कंपनी के डायरेक्टरों को लगा कि अब आगे प्रसार रोक देने, बर्बाद कर देने वाले खर्च बंद कर देने, और भारत में ब्रिटेन को जो कुछ हाल में उपलब्ध हुआ था उसे ही सुरक्षित करने और मजबूत बनाने का समय आ चुका है। इसलिए वेलेजली को भारत से वापस बुला लिया गया और कंपनी ने जनवरी 1806 में राजघाट की संधि के द्वारा होल्कर के साथ शांति स्थापित कर ली और उसे उसके राज्य का एक बड़ा भाग लौटा दिया।

वेलेजली की प्रसार की नीति सफलता के निकट पहुंची ही थी कि रोक दी गई थी। फिर भी इसका नतीजा यह हुआ था कि ईस्ट इंडिया कंपनी भारत की सबसे बड़ी शक्ति बन चुकी थी। कंपनी की न्यायिक सेवा के एक युवक अधिकारी हेनरी रोबरक्ला ने 1805 में लिखा :

> भारत में मौजूद हर अंग्रेज गर्व से भरा हुआ और अकड़ा हुआ है। वह अपने को एक विजित जनता का विजेता मानता है और अपने नीचे के हर व्यक्ति को कुछ श्रेष्ठता की भावना के साथ देखता है।

लार्ड हेस्टिंग्ज के काल में प्रसार (1813-22)

द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध ने मराठा सरदारों की शक्ति को तोड़ दिया था, पर उनके साहस को नहीं तोड़ सका था उन्होंने 1817 में अपनी खोई स्वाधीनता और प्रतिष्ठा को फिर से पाने का एक और हताशापूर्ण प्रयत्न किया। मराठा सरदारों का एक संयुक्त मोर्चा बनाने में पहल पेशवा ने की जो ब्रिटिश रेजिडेंट के कड़े नियंत्रण में छटपटा रहा था। पेशवा ने नवंबर 1817 में पूना में अंग्रेज रेजिडेंट पर हमला किया। अप्पा साहब ने नागपुर स्थित रेजीडेंसी पर हमला किया और माधवराव होल्कर युद्ध की तैयारी करने लगा।

गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्ज 1813–22 ने पूरी ताकत के साथ जवाबी हमला किया। उसने सिंधिया को ब्रिटिश अधीनता स्वीकार करने को मजबूर किया, और पेशवा, भोंसले और होल्कर की सेनाओं को हराया। पेशवा को गद्दी से उतारकर और पेंशन देकर कानपुर के पास बिठूर में बिठा दिया गया। उसका राज्य हड़पकर बंबई की विस्तारित प्रेसिडेंसी बनाई गई। होल्कर और भोंसले ने सहायक सेना रखना स्वीकार कर लिया। मराठों के गर्व को संतुष्ट करने के लिए पेशवा की जमीन पर सतारा का छोटा-सा राज्य बनाया गया और उसे छत्रपति शिवाजी के एक वंशज को दे दिया गया जो पूरी तरह अंग्रेजों पर निर्भर होकर सतारा शासन चलाता रहा। दूसरे भारतीय राज्यों के शासकों की तरह

(1) पेशवा — पूना — 1817 अप्पा साहब — नागपुर, बिठूर — पेशवा — कानपुर

Scanned with CamScanner

अब मराठा सरदार भी ब्रिटिश सत्ता की दया पर आश्रित हो गए ।

राजपूताना के राज्य कई दशकों से सिंधिया और होल्कर के प्रभुत्व में थे । मराठों के पतन के बाद वे लोग भी अपनी स्वाधीनता का फिर से दावा करने में असमर्थ थे और उन्होंने तत्काल ही अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर ली ।

इस तरह 1818 तक पंजाब और सिंध को छोड़कर पूरा भारतीय उपमहाद्वीप अंग्रेजों के नियंत्रण में आ चुका था । इस पूरे क्षेत्र के एक भाग पर सीधे अंग्रेजों का शासन था और बाकी भाग पर अनेक भारतीय शासक राज्य कर रहे थे जिन पर अंग्रेजों का पूर-पूरा जोर चलता था । इन राज्यों के पास अपनी सेनाएं नहीं के बराबर थीं, और उनके कोई स्वतंत्र विदेशी संबंध नहीं थे । उनके राज्यों में उन्हीं पर नियंत्रण रखने के लिए जो ब्रिटिश सेना तैनात थी उसके भारी खर्च उनको उठाने पड़ते थे । वे अपने अंदरूनी मामलों में स्वायत्त तो थे, मगर इस सिलसिले में भी रेजिडेंट के रूप में अंग्रेजों के अधिकार को स्वीकार करते थे । वे लगातार आजमाइश की हालत में बने रहे ।

ब्रिटिश शासन को सुदृढ़ बनाने का काम (1818-57)

पूरे भारत को जीतने का काम अंग्रेजों ने 1818 से 1857 तक के काल में किया । सिंध और पंजाब भी जीत लिए गए तथा अवध, मध्य प्रांत और बहुत सारे छोटे-छोटे राज्यों का अधिग्रहण कर लिया गया ।

सिंध की विजय : यूरोप और एशिया में अंग्रेजों और रूसियों की शत्रुता बढ़ रही थी और अंग्रेजों को भय था कि अफगानिस्तान या फारस के रास्ते रूसी भारत पर हमला कर सकते हैं । सिंध की विजय इसी का परिणाम थी । रूस को रोकने के लिए ब्रिटिश सरकार ने अफगानिस्तान और फारस में अपना प्रभाव बढ़ाने का फैसला किया । उसने यह भी महसूस किया कि यह नीति तभी सफल हो सकेगी जब सिंध को ब्रिटिश नियंत्रण में लाया जाए । सिंध नदी के व्यापारिक उपयोग की संभावनाएं भी इस लालच का एक कारण थीं ।

1832 की एक संधि के द्वारा सिंध की सड़कों और नदियों को ब्रिटिश व्यापार के लिए खोल दिया गया था । सिंध के अमीर कहलाने वाले सरदारों से 1839 में एक सहायक संधि पर हस्ताक्षर कराए गए । अंत में पहले के इन वादों को भुलाकर कि उनके राज्य पर कोई आंच नहीं आएगी, सर चार्ल्स नेपियर ने 1843 में एक संक्षिप्त अभियान के बाद सिंध का अधिग्रहण कर लिया । इससे पहले नेपियर ने अपनी डायरी में लिखा था कि "हमें सिंध पर कब्जा करने का कोई हक नहीं है, फिर भी हम ऐसा करेंगे, और यह बदमाशी का एक बहुत ही लाभदायक, उपयोगी और मानवीय उदाहरण होगा ।" यह काम करने के बदले उसे पुरस्कारस्वरूप सात लाख रुपए मिले ।

पंजाब की विजय : जून 1839 में महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद पंजाब में राजनीतिक अस्थिरता फैल गई, और वहां ताबड़तोड़ सरकारें आई और गईं । स्वार्थी और भ्रष्ट नेताओं का बोलबाला हो गया। अंत में सत्ता बहादुर और देशभक्त मगर एकदम अनुशासनहीन सेना के हाथों में आई । इसके बाद अंग्रेज सतलज पार पांच पानियों के देश को लालच भरी निगाहों से देखने लगे, हालांकि उन्होंने 1809 में रणजीतसिंह के साथ स्थायी मित्रता की संधि पर हस्ताक्षर किए थे ।

अंग्रेजों के युद्धोन्मादी कदमों और पंजाब के भ्रष्ट सरदारों के साथ उनकी साजिशों के कारण पंजाब की सेना भड़क उठी । 1845 के बसंत में यह समाचार पंजाब पहुंचा कि पुल बनाने के काम में आने वाली नावें बंबई से सतलज किनारे स्थित फिरोजपुर के लिए भेजी गई हैं । आगे के इलाकों में बैरकें बनाई गई हैं और उनमें अतिरिक्त सेना रखी गई है, और पंजाब से लगने वाली सीमा के लिए अतिरिक्त रेजीमेंटें भेजी जा रही हैं । पंजाब की सेना को विश्वास हो गया कि अंग्रेज पंजाब पर कब्जा करने पर आमादा थे, और फिर पंजाब की सेना ने जवाबी कार्रवाइयां कीं । जब दिसंबर में सेना ने सुना कि प्रधान सेनापति लार्ड गफ और गवर्नर-जनरल लार्ड हार्डिंग्ज फिरोजपुर की ओर बढ़ रहे हैं तब उसने भी हमला करने का फैसला किया । इस तरह 13 दिसंबर 1845 को दोनों के बीच युद्ध छिड़ गया । इस विदेशी खतरे के आगे हिंदू, मुसलमान और सिख फौरन एक हो गए । पंजाब की सेना बहुत बहादुरी और उदाहरणीय साहस के साथ लड़ी । लेकिन उसके कुछ नेता पहले ही गद्दार बन चुके थे । प्रधानमंत्री राजा लालसिंह और प्रधान सेनापति मिस्सर तेजसिंह का शत्रु के साथ गुप्त पत्रव्यवहार

Scanned with CamScanner

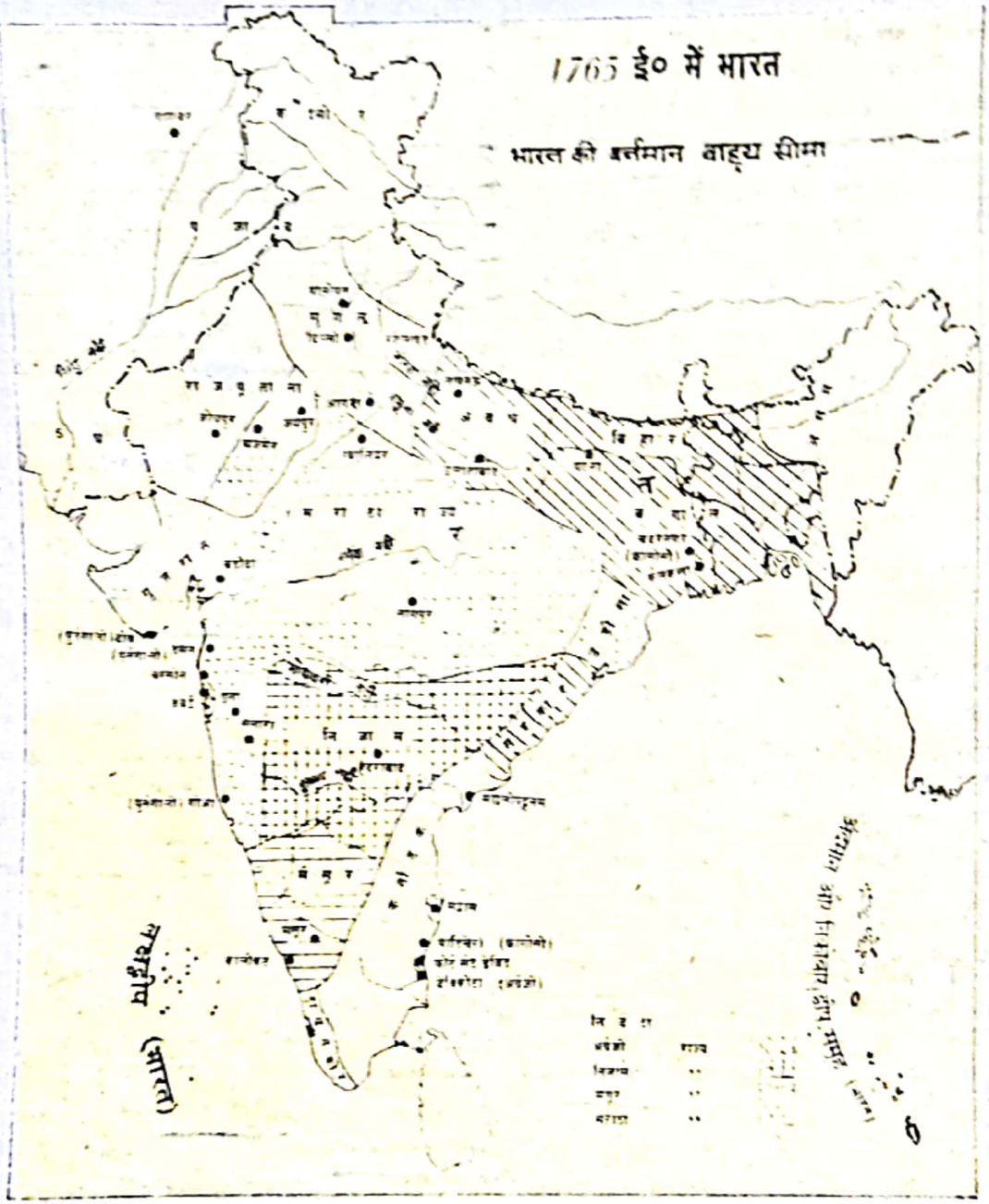

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

© भारत सरकार का प्रतिलिप्यधिकार, 1986

समुद्र में भारत का जल प्रदेश उपयुक्त आधार रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

Scanned with CamScanner

जारी था । पंजाब की सेना हार स्वीकार करने और 8 मार्च 1846 को लाहौर में एक अपमानजनक समझौते पर हस्ताक्षर करने को बाध्य हो गई । अंग्रेजों ने जलंधर के दोआब को हड़प लिया और पचास लाख रूपए नगद लेकर जम्मू और कश्मीर को राजा गुलाबसिंह डोगरा के हवाले कर दिया । पंजाब की सेना को घटाकर 20,000 पैदल और 12,000 घुड़सवार सेना तक सीमित कर दिया गया और एक भारी ब्रिटिश सेना लाहौर में तैनात कर दी गई ।

बाद में 16 दिसंबर 1846 को एक और समझौता हुआ जिसके अनुसार राज्य के एक-एक विभाग के सारे मामलों में लाहौर स्थित अंग्रेज रेजिडेंट को पूरा अधिकार दे दिया गया । इसके अलावा राज्य के किसी भी भाग में सेना तैनात करने की छूट अंग्रेजों को मिल गई । अब अंग्रेज रेजिडेंट ही पंजाब का वास्तविक शासक बन बैठा और पंजाब अपनी स्वाधीनता खोकर एक अधीन राज्य बन गया ।

लेकिन भारत में खुलकर साम्राज्यवादी आक्रमणों का समर्थन करने वाला ब्रिटिश अधिकारियों का भाग अभी भी असंतुष्ट था, और वह पंजाब पर सीधे-सीधे ब्रिटिश शासन लादना चाहता था । इसका अवसर उसे 1848 में मिला जब स्वतंत्रता-प्रेमी पंजाबियों ने अनेकों स्थानीय विद्रोह छेड़ दिए । इनमें से दो प्रमुख विद्रोहों के नेता मुलतान के मूलराज और लाहौर के पास के छतरसिंह अटारीवाला थे । एक बार फिर पंजाबियों की निर्णायक हार हुई । इस अवसर का फायदा उठाकर लार्ड डलहौजी ने पंजाब को हड़प लिया । इस तरह भारत का अंतिम स्वाधीन राज्य भी भारत के ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया ।

डलहौजी की अधिग्रहण की नीति (1848-56)

लार्ड डलहौजी 1848 में गवर्नर-जनरल बनकर भारत आया । वह शुरू से ही इस बात पर आमादा था

द्वितीय ब्रिटिश-सिक्ख युद्ध के दौरान ब्रिटिश फौज द्वारा मुलतान पर धावा 1849

Scanned with CamScanner

कि जितने बड़े इलाके पर संभव हो, प्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन स्थापित किया जाए । उसने घोषणा की थी कि "भारत के सभी देशी राज्यों का खात्मा अब कुछ ही समय की बात है ।" उसकी नीति का उद्देश्य भारत को ब्रिटेन का निर्यात बढ़ाना था । दूसरे साम्राज्यवादी आक्रमणकारियों की तरह डलहौजी को भी विश्वास था कि भारत के देशी राज्यों के लिए ब्रिटेन का निर्यात इसलिए घट रहा था कि इन राज्यों के भारतीय शासक उनका शासन ठीक से नहीं चला रहे है । इसके अलावा वह समझता था कि "भारतीय सहयोगी" भारत में ब्रिटिश विजय में जितने सहायक हो सकते थे उतने हो चुके हैं, और अब उनसे छुटकारा पाने में ही लाभ है ।

लार्ड डलहौजी ने अपनी अधिग्रहण की नीति के लिए जिस साधन का सहारा लिया, वह था राज्य विलय का सिद्धांत (डाक्ट्रिन आफ लैप्स) । इस सिद्धांत के अनुसार अगर किसी सुरक्षाप्राप्त राज्य का शासक बिना एक स्वाभाविक उत्तराधिकारी के मर जाए तो उसका राज्य उसके दत्तक उत्तराधिकारी को नहीं सौंपा जाएगा जैसी कि सदियो से इस देश में परपरा चलती आ रही थी । इसके बजाए, अगर उत्तराधिकारी गोद लेने के काम को पहले से अंग्रेज अधिकारियों की सहमति प्राप्त न होगी तो वह राज्य ब्रिटिश राज्य में मिला लिया जाएगा। 1848 में सतारा और 1854 में नागपुर और झांसी समेत अनके राज्यों का इसी सिद्धांत के अनुसार अधिग्रहण कर लिया गया था ।

डलहौजी ने अनेक भूतपूर्व शासकों के अधिकारों को मान्यता देने और उन्हें पेंशन देने से भी इनकार कर दिया । इस तरह कर्नाटक और सूरत के नवाबों और तंजौर के राजा की उपाधिया छीन ली गई । इस तरह भूतपूर्व पेशवा बाजीराव द्वितीय, जिसे बिठूर का राजा बना दिया गया था, जब मरा तो डलहौजी ने उसका वेतन या पेंशन उसके दत्तक पुत्र नाना साहब को देने से इनकार कर दिया ।

लार्ड डलहौजी की निगाहे अवध के साम्राज्य को हड़पने पर भी लगी थीं । पर इस काम में कुछ बाधाएं थीं । पहली यह कि बक्सर की लड़ाई के बाद से ही अवध के नवाब अंग्रेजों के सहयोगी रहे थे । इसके अलावा इन तमाम वर्षों में वे अंग्रेजों के सबसे अधिक आज्ञाकारी भी रहे थे । अवध के नवाब के कई उत्तराधिकारी थे और इसलिए उस पर राज्य विलय का सिद्धांत भी लागू नहीं किया जा सकता था । अवध के नवाब को राज्य से वंचित करने के लिए किसी और बहाने की जरूरत थी । अंत में लार्ड डलहौजी ने अवध की जनता की दशा सुधारने के विचार का सहारा लिया । नवाब वाजिद अली शाह पर इल्जाम लगाया गया कि उन्होंने अपना शासन ठीक से नहीं चलाया है और सुधार लागू करने से इनकार कर दिया है इसके बाद उनके राज्य को 1856 में हड़प लिया गया ।

निःसंदेह अवध के शासन का पतन वहां की जनता के लिए कष्ट का कारण था । अवध के नवाब भी अपने समय के दूसरे शासकों की तरह स्वार्थी और अय्याशियों में डूबे हुए थे और प्रशासन ठीक से चलाने या जनता की भलाई करने की चिंता करते थे । पर इस हालात के लिए अंशतः अंग्रेज भी जिम्मेदार थे जो 1801 से ही अवध पर नियंत्रण किए हुए थे और परोक्ष रूप से वहां राज्य कर रहे थे । वास्तव में डलहौजी का लालच इस कारण से था कि अवध अपनी बेपनाह दौलत के साथ मैनचेस्टर में तैयार मालों के लिए एक अच्छा बाजार बन सकता था; यही चीज थी जो उसकी तथाकथित 'मानवतावादी' भावनाओं के पीछे काम कर रही थी । और ऐसे ही कारणों से कच्चे कपास की ब्रिटेन की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए डलहौजी ने 1853 में निजाम से बरार का कपास-उत्पादक प्रांत ले लिया था ।

यह बात हमें स्पष्ट समझ लेनी चाहिए कि देशी राज्यों के बने रहने या हड़पे जाने का उस समय कोई अधिक महत्व नहीं रह गया था । वास्तव में तब कोई भारतीय राज्य था भी नहीं । सुरक्षाप्राप्त देशी राज्य भी उसी तरह ब्रिटिश साम्राज्य के भाग थे जिस तरह कंपनी के प्रत्यक्ष शासन वाले इलाके । अगर कुछ राज्यों पर ब्रिटिश नियंत्रण का स्वरूप बदला गया तो केवल अंग्रेजों की सुविधा के लिए ! वहां की जनता के हित का इस परिवर्तन से कोई संबंध न था ।

Scanned with CamScanner

अभ्यास

1. निम्नांकित शब्दों का अर्थ स्पष्ट कीजिए :
फ़ैक्टरी (कारखाना), दस्तक, द्वैध शासन, निज़ामत दीवानी अधीन राज्य,
2. पंद्रहवीं सदी के अंत के आसपास से लेकर अठारहवीं सदी के मध्य के आसपास के बीच यूरोप के साथ भारत के व्यापार का विवेचन कीजिए विभिन्न व्यापारिक कंपनियों के बीच प्रतिस्पर्धाओं और टकराओं का विवेचन कीजिए और यह भी बताइए कि अंततः इनको कैसे हल किया गया ।
3. दक्षिण भारत के आंग्ल–फ्रांसीसी युद्धों का वर्णन कीजिए इनके परिणामों का विवेचन कीजिए ।
4. बंगाल के नवाब और अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच होने वाले युद्ध के कारण बताइए । उनक कारकों को विवेचन कीजिए जिनके कारण अंग्रेज विजयी हुए । इसके परिणामों पर भी प्रकाश डालिए ।
5. उन घटनाओं का वर्णन कीजिए जिनकी वजह से बक्सर का युद्ध हुआ । इस युद्ध के नतीजे क्या हुए ?
6. 1775 से 1782 की अवधि को भारत में ब्रिटिश सत्ता के लिए "अंधकारकाल" क्यों कहा गया है ? इसकी व्याख्या कीजिए ।
7. वलेजली ने भारत में ब्रिटिश सत्ता के विस्तार के लिए जो तरीके अपनाए उनका वर्णन कीजिए । इन तरीकों की क्षमता का आकलन कीजिए और अपने तर्क के समर्थन में उदाहरण भी दीजिए ।
8. मैसूर के साथ ब्रिटिश लोगों के युद्धों का जो सिलसिला चला था, उसका इतिहास बताइए ।
9. मराठा और ब्रिटिश लोगों के बीच जो संघर्ष हुए उनके मुख्य चरणों का वर्णन कीजिए । उन घटनाओं के आरंभ तथा विकास का वर्णन कीजिए जिनके कारण मराठा शक्ति का लोप हो गया। इसके नतीजों का विवेचन कीजिए ।
10. अवध और सिंध को अपने राज्य में मिलाने के लिए अंग्रेजों ने जो कदम उठाए उनका विवेचन कीजिए ।
11. उदाहरण देकार डलजौजी की विजय तथा राज्यों में मिलाने की नीति का वर्णन कीजिए ।
12. सत्रहवीं सदी में अंग्रेजों पुर्तगालियों और फ्रांसीसियों ने जहां–जहां अपने व्यापारिक केंद्र स्थापित किए थे, भारत के मानचित्र में उनको दिखाइए।
13. 1766, 1805 और 1856 में भारत के जिन भू–भागों पर ब्रिटिश लोगों का प्रत्यक्ष शासन था, भारत के मानचित्र पर उनको प्रदर्शित कीजिए ।
14. निम्नांकित दस्तावेजों को पढ़िए तथा उनके ऊपर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए:

क प्लासी की लड़ाई के पहले अंग्रेज अधिकारियों के साथ मीर जाफर द्वारा की गई संधि ।
ख शाह आलम द्वितीय द्वारा जारी किया गया फरमान जिसमें बंगाल बिहार तथा उड़ीसा की दीवानी ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी को दी गई थी
ग 12 अक्टूबर 1800 को ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी और निज़ाम के बीच की गई संधि ।

(1) कर्नाटक, सूरत और तंजौर के राजा की उपाधियाँ छीन ली गईं।
(2) बाजीराव द्वितीय का दत्तक नानासाहब
(3) बाजीराव II — बिठूर

Scanned with CamScanner